शंभुनाथ शर्मा डोगरी भाषा के बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि हैं। अपनी प्रशस्त एवं ओजपूर्ण लेखनी द्वारा उन्होंने देश, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का गुणगान किया। उनकी क्षेत्रीय भावना की कविताएँ भी जातीय चेतना से अनुप्राणित हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि डोगरी कवि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सर्वोपरि मानते हैं। कहीं भी क्षेत्रीय भावना को उभार कर न तो उन्होंने अपना स्वार्थ साधा है और न ही राष्ट्र के विघटन को ही प्रोत्साहित किया है। उनकी क्षेत्रीयता राष्ट्रीय भावना की उपकारक है। अपनी जन्म-भूमि से जुड़े रहकर कवि राष्ट्रीय चेतना के महायज्ञ में समिधा देता रहा है।

इतिवृत्त परम्परा के अंतिम कवि शंभुनाथ शर्मा अपने सांस्कृतिक विरसे से लोक-तत्त्व को कल की एक अमूल्य धरोहर के रूप में सँभाले हुए हैं और यह उनकी कविता की अन्तर्वर्ती शक्ति है। उन्होंने वर्णनात्मक शैली में डोगरा जन-जीवन एवं परिवेश का अत्यंत कलात्मक और प्रामाणिक अंकन किया है। वे निष्ठावान मानसिकता के कवि हैं। यह निष्ठा मानवतावाद के मूलभूत सिद्धांतों से उत्प्रेरित है। समय-समय पर उनका सामना जैसी स्थितियों से पड़ता रहा, उन्हें वे मानवता, राष्ट्रीय हित अथवा सौंदर्यवादी दृष्टि के अनुरूप कविता में ढालते रहे।

कवियों की जिस पीढ़ी से शंभुनाथ का संबंध रहा है, उसके समक्ष कविता यथार्थ चित्रण द्वारा मात्र जीवन की तल्खी उभारने की विधा नहीं है। उनकी मान्यता रही है कि कविता द्वारा समाज को नई दिशा दी जा सकती है। अथवा इस दिशा में उन्मेषकारी प्रयास तो होना ही चाहिए। उन्होंने मनुष्य को सक्रिय होकर समय-स्वर पहचानने का, देश प्रेम का और मानवता की सेवा का संदेश दिया है। वे मानते हैं कि मानव संस्कृति की चरम उपलब्धि शांति है जिसमें मानवीय प्रतिभा, सृजन, कल्पना और विचार अपने शिखर पर पहुँचते हैं। शांति प्रेम और सद्‌भाव के पेड़ का अमृत फल है। मानवीय विकास का ध्येय इसी अमृत फल से संबद्ध होना चाहिए।

इस विनिबंध के लेखक श्री ओम गोस्वामी हिन्दी और डोगरी दोनों भाषाओं में लिखते हैं। उनकी बहुत-सी कृतियाँ पुरस्कृत हैं। उनके कहानी संकलन 'सुन्ने दे चिड़ी' (सोने की चिड़िया) के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी द्वारा 1986 में पुरस्कृत किया गया। सम्प्रति, वे 'जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादेमी' में शब्द कोश अनुभाग के प्रमुख संपादक है। प्रस्तुत कृति में कवि शंभुनाथ शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ भारतीय विचारधारा को उनके योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

पन्द्रह रुपये

शंभुनाथ शर्मा

ओम गोस्वामी

भारतीय साहित्य के निर्माता

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्रचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

शंभुनाथ शर्मा

लेखक

ओम गोस्वामी

साहित्य अकादेमी

परिप्रेक्ष्य

डुग्गर का सांस्कृतिक भूगोल :

हिमालय की पर्वत शृखलाओं में अवस्थित जम्मू और कांगड़ा की नैसर्गिक छटा देखते ही बनती है । इस वर्णनातीत सौंदर्य ने मर्मज्ञ हृदयों में सदा सौंदर्य चेतना को छलकाया है । प्रकृति ने वरद हस्त से भाव-संसार का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों की काव्यानुभूति को समृद्ध किया है । डोगरा-पहाड़ी कवियों ने धौला-धार, काली-धार और अन्य प्राकृतिक उपदानों का वर्णन करके वस्तुतः उस अनूठे भाव-सौंदर्य का गान किया है, जिसकी छवि प्रत्येक सहृदय के मानस पर अमिट छाप छोड़ जाती है । ऐतिहासिक दृष्टि से जम्मू और कांगड़ा को शांति और सद्भावना की शरण-स्थलियां कहा जाता है । इन दोनों क्षेत्रों को दारुल-अमान की संज्ञा दी जाती रही है ।

पर्वतीय उपत्यकाओं, ढलानों, मैदानों अथवा तलहटियों में बसे डोगरा-पहाड़ी लोग मेहनती और मुख्यता कृषि-जीवी हैं । परंतु यह एक तथ्य है कि पड़ोसी प्रदेश पंजाब की तरह सोना उगलने वाली भूमि के स्वामी न होते हुए भी यह लोग अपनी कड़ी मेहनत और कम उपज के बावजूद सनातन संतुष्टि में जीते आ रहे हैं । इतना ही नहीं, जीवट के धनी यह लोग अपने क्षेत्र को देव-भूमि कहने में विशेष गौरव का अनुभव करते हैं । पुरातन भारतीय आस्था और संस्कृति की धारा अभी इस क्षेत्र में अबाध बहती आ रही है ।

डोगरा-पहाड़ी लोग मुख्यता शक्ति के उपासक हैं । पुरा दंत कथाओं के अनुसार शिव अर्धांगिणी पार्वती चूंकि हिमालय के इसी क्रोड़ में उत्पन्न हुई थी, इसलिए इन लोगों का अपनी पुरातन मान्यताओं के प्रति श्रद्धावनत होना स्वाभाविक है । शक्ति उपासना का प्रचलन भारत के किसी प्रदेश में उतना नहीं है जितना कि जम्मू

और हिमाचल में चला आ रहा है । सैकड़ो शक्ति मंदिर शक्ति-पूजा और अंततोगत्वा पर्वत पुत्री पार्वती की पौराणिक प्रतिष्ठा की कथा कहते नज़र आते हैं । जम्मू प्रांत में वैष्णो देवी, बाहवे वाली, महामाया, रिऊशिरा देवी, मनसा देवी, बाला सुंदरी, सुकराला और सरथल अष्ठादश भुजी आदि के प्रमुख शक्ति पीठों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे देवी-मंदिर हैं । इस भाँति हिमाचल में ब्रजेश्वरी, ज्वालामुखी, चिंतपुरणी, नयनादेवी, चामुंडा आदि अनेक अन्य मंदिर डोगरा जाति में मूला प्रकृति एवं मातृका शक्ति की उपासना के साक्षी हैं । शक्ति-पूजा का मुख्य कारण यहाँ के जन-मानस में प्राचीन काल से चली आ रही यह धारणा है कि पार्वती का जन्म जम्मू के पर्वतीय राज्य 'चनैहनी' में यहाँ के नरेश राजा हिमवान के घर हुआ था । शिव से संबद्ध मिथकों में वर्णित अनेक स्थान जम्मू के पर्वतीय क्षेत्र में आज भी विद्यमान हैं ।

हरियाणा प्रदेश के शैव जंगम अपनी प्रसिद्ध शिव गाथा में यों गाते हैं—

"जम्मू देस में नगर चंदैनी,
ता मैं रहता मैंचल राजा ।"

तमाम मातृका शक्तियों की मूलाधार पार्वती को माना गया है । यही कारण है कि डोगरा-पहाड़ी लोग शक्ति के उपासक हैं ।

शक्ति उपासना का मनोवैज्ञानिक पहलू यह है कि डोगरा-पहाड़ी लोग सदियों से सैन्य व्यवसाय को अपनाते आए हैं । क्षीण आर्थिक दशा भी उन्हें यह व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य करती रही है । परंतु इस व्यवसाय के प्रति उनमें एक आकर्षण उस परंपरा के कारण भी है जो प्रायः डोगरा जाति के सांस्कृतिक मूल्यों में सम्मिलित हो चुकी है । यही कारण है कि डोगरी लोकगीतों में बहुत ज्यादा संख्या ऐसे गीतों की है जिनमें बिरहनी नायिका सिपाही (सैनिक) के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही है । इस परंपरा का सर्वज्ञात पहलू है—देश हित में मृत्यु का वरण । अतएव सामरिक मानसिकता, डोगरा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । जीवन-यापन

की कठोर परिस्थितियों से दो-चार होने वाले डोगरा लोग युद्ध में जहाँ दिलेरी और वीरता की मिसाल कायम करते आए हैं, वहीं उनकी कलागत उपलब्धियां भी कम नहीं हैं । अमन की छत्रछाया में इस क्षेत्र ने पहाड़ी चित्रकला की अनुपम शैली को जन्म दिया है । बसोहली-कांगड़ा की सूक्ष्म चित्रकला का उन्नयन डोगरा-पहाड़ी लोगों के कला प्रेम का साक्षी है । इस शैली के चित्र आज लंदन, बोस्टन एवं मास्को की कलादीर्घाओं में शोभायमान होकर डोगरा-पहाड़ी लोगों और उनकी कला समझ की कीर्तिपताका बने भारत के यश को चार चाँद लगा रहे हैं ।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में जम्मू और कांगड़ा आदि क्षेत्रों का वर्णन 'वाहिक' प्रदेश के अंतर्गत हुआ है । इन्हें क्रमशः त्रिगर्त और द्विगर्त कहा जाता रहा है । विद्वानों का मत है कि मूलतः दोनों प्रदेश त्रिगर्त के अंतर्गत आते थे, बाद में त्रिगर्त के सादृश्य पर जम्मू के पहाड़ी प्रदेश के लिए द्विगर्त का प्रचलन हुआ । इस संज्ञा का प्रचलन भी कम पुराना नहीं है । चंबा के एक ताम्रपट में दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के घटनाक्रम में दुर्गरिश्वर अथवा डुग्गर नरेश का ज़िक्र आता है । द्विगर्त से डुग्गर शब्द का विकास हुआ बताया जाता है । डुग्गर के वासी डोगरा कहलाए परंतु डुग्गर व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । सूफी संत बाबा फरीद के एक वाक् में डुग्गर शब्द का उल्लेख हुआ है ।

बहरहाल, यह सुनिश्चित है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित मद्र देश वस्तुतः जम्मू और हिमाचल क्षेत्र ही है और तौषी नदी सूर्यपुत्री तवी नदी है । डोगरा क्षेत्र की सांस्कृतिक विशिष्टता एवं डोगरा संज्ञा में समाहित होने वाले क्षेत्रों की परिगणना कविराज भोलानाथ ने यों की है—

लोका डुग्गर देशजा न चपला नानर्थवाद प्रिया : ।
ते पश्यन्ति सुहृद्दृशा निज सखीन काश्मीर देशोभ्दवान ।।
खण्ड कुल्लुप्रदेशव्यापि निखलं शिमलाद्रिपर्यन्तगम् ।
सर्व डुग्गर संज्ञयास्ति प्रथितं नाना नृपै शासितम् ।।

-राजतरङ्गिणी (परिशिष्टम)

अर्थात्—वाद-विवाद के प्रेमी परंतु चंचल स्वभाव से रहित डुग्गर देश के लोग कश्मीर प्रदेश के प्रति सद्भावना रखते हैं और उनसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं । जो प्रदेश उत्तर की ओर कुल्लू प्रदेश और पूर्व में शिमला तक व्याप्त है, वह सारा प्रदेश डुग्गर कहलाता है और यह अनेक राजाओं द्वारा प्रशासित है ।

अंग्रेज़ों से भी पहले कुल्लू, कांगड़ा, शिमला, पठानकोट, गुरदासपुर, दीनानगर, शकरगढ़ (अब पाकिस्तान) और तहसील हमीरपुर (होशियारपुर), डफरवाल (स्यालकोट), मनावर छंभ आदि विस्तृत क्षेत्र के लोग, प्रमुख राजाओं की सेनाओं में काम करते थे । भाषाई एवं सांस्कृतिक एकता के आधार पर अंग्रेज़ों ने इन क्षेत्रों से डोगरा रेजीमेंटें संगठित की थीं । आज भी भारतीय सेना की डोगरा टुकड़ियों में इन क्षेत्रों के लोग इसी आधार पर भरती होते हैं ।

विस्तृत भू-क्षेत्र पर फैले डोगरा-पहाड़ी लोगों की सांस्कृतिक एकता यहाँ के जन-जीवन की रंगीन मिजाज़ी से उद्भूत है । बुवाई, जुताई, कटाई करते हुए किसान मेहनत के गीत गाते हैं तो सामूहिक कृषि कार्यों में लगे हुए लोग गायन एवं वादन द्वारा सामुदायिक जीवन का अनुपम दृश्य प्रस्तुत करते हैं । पर्वतों पर रात्रि की नीरवता को भंग करते बाँसुरियों और चंग के मादक स्वर और खामोशी के पहलू से फूटती पहाड़ी गीतों की स्वर लहरियां—पहाड़ी जन-जीवन की अभिन्न पहचान हैं । सरल हृदय पहाड़ी लोग शांति और मेहनत को ही जीवन का मूलमंत्र मानते हैं । परंतु वे आनंद का कोई अवसर खाली नहीं जाने देते । यही कारण है कि प्रत्येक सामुदायिक गतिविधि को एक उत्सव का-सा महत्त्व प्राप्त है । मेलों, नृत्यों एवं धार्मिक वृत्ति से संबद्ध अनुष्ठानों में जन-मानस की रागात्मकता के दर्शन होते हैं । यह सांस्कृतिक चिन्ह डोगरा-पहाड़ी लोगों की ज़िंदादिली का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ।

सांस्कृतिक एकात्मकता :

किसी ने सत्य ही कहा है कि प्रकृति ऐसा दर्पण है जिसके द्वारा

हम ईश्वरीय सत्ता का दर्शन कर पाते हैं । इसी भाँति यदि कवि मन को युगीन यथार्थ का प्रतिफलक कहा जाए तो कोई अनौचित्य नहीं होगा । कवि की आवाज़ जनता की आवाज़ होती है । डोगरी-पहाड़ी कवियों ने जम्मू और कांगड़ा की सांस्कृतिक एकात्मकता की पुष्टि अपनी रचनाओं में की है । लालचंद प्रार्थी ने इस बहुरंगी समाज के विषय में यों लिखा है—

कुल्लू दा दशहरा, चंबे मिंजरां दे मेले ओ ।
कांगड़े ते जम्मू छिंजां घुलन गुरु चेल्ले ओ ।
चंबा, कुल्लू, कांगड़ा ते जम्मू इक देश ओ ।
ऊना, देहरादून, हिमाचल परदेस ओ ।"

चंबा, कुल्लू, कांगड़ा, जम्मू एक ही सांस्कृतिक खंड है । कुल्लू का विख्यात 'दशहरा मेला' और चंबा का 'मिंजरों का मेला' तमाम पहाड़ी लोगों के सांझे पर्व हैं । जम्मू और कांगड़ा के जन-मानस का उल्लास इन क्षेत्रों में आयोजित होने वाले दंगलों में व्यक्त होता है । इन स्थानों के अतिरिक्त ऊना, देहरादून तथा हिमाचल प्रदेश के सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों की संस्कृति एवं भाषा में स्पष्टतया एक सांझ है ।

जम्मू के सुप्रसिद्ध कवि रघुनाथ सिंह सम्याल इस विषय में कहते हैं—

"भाव बी, भेस बी, देस बी रांगड़ा,
मीरपुर, जम्मुआं, नूरपुर, कांगड़ा ।
सोहे दी ब्हार ते बसोए दा भांगड़ा,
दब्बियै ढोल बजाई जायां —
डोगरा देस जगाई जायां.....।"

हमीरपुर, जम्मू, नूरपुर और कांगड़ा का क्षेत्र एक ही रंग में रंगा हुआ है । यहाँ के लोगों का भाव और भेस दोनों एक हैं । भाव से कवि का तात्पर्य भाषा और इसके मीठे गीतों तथा संस्कृति से है जबकि भेस से वह वेश-भूषा तथा जातीय आचरण की एकता की बात कहता है ।

स्वतंत्रता के स्फुलिंग और स्वामी भक्ति :

डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र में शांति, सौहार्द और भाईचारे की युगीन परंपरा के कारण ही यहाँ बसोहली-कांगड़ा चित्र शैली पनप सकी । प्रशांत वातावरण में युगीन लौकिक परंपराएं अबाध गति से पलती-बढ़ती रही हैं । सदियों से सामंती मानसिकता का बोझा ढो रहे जनमानस में नए जीवन मूल्यों और जीवन की बदलती सच्चाइयों को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं रहती । अपितु, नएपन और बदलाव के प्रत्येक स्वर का विरोध किया जाने लगता है । यही कारण है कि 1947 ई. तक डोगरा राजवंश की सरपस्ती तले भारतीय स्वतंत्रता के स्वर उभर नहीं पाए । जो होता आ रहा है, इसके प्रति अधिकांश लोग संतुष्ट नज़र आते हैं ।

जम्मू और कांगड़ा, डोगरा-पहाड़ी संस्कृति के दो केंद्र होते हुए भी राजनीतिक आचरण की दृष्टि से दोनों की दिशाएं विपरीत हैं । जम्मू में जहाँ शासन एवं सत्ता दोनों प्रायः केंद्रीय सत्ता के वफादार रहे हैं, वहीं कांगड़ा में कभी-कभार केंद्र से स्वतंत्र होने की अभिलाषा भी प्रतिभासित होती है । जम्मू कभी काबुल और तक्षशिला के राजाओं की पहाड़ी जागीर रहा था, जिसे कठिन समय में वे शरण के लिए इस्तेमाल करते थे । प्राचीन जम्मू में सत्ता का केंद्र 'पुरमंडल' से संचालित होता था, जिसे प्रख्यात विद्वान जगदीशचंद्र साठे पूरु राजाओं की राजधानी मानते हैं ।

1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में जम्मू की सेनाओं ने अंग्रेज़ों की ओर से भाग लिया था । 1920 ई. में अंग्रेज़ों की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेकर लौटने वाली डोगरा पलटन के सम्मान में आयोजित एक समारोह में महता मथरादास ने जो कविता पढ़ी उससे प्रसंगवश डोगरा शूरवीरों की 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में अता की गई निषेधात्मक भूमिका को यों सराहा गया—

"दिल्लियै दा तुसें गदर चुकाया,
पैरें एठ अगरूर रलाया,
डुग्गर दी पेच रखाई ।"

अर्थात्—1857 ई. के गदर को दबा कर तुमने बागियों के

अभिमान को मिट्टी में मिला दिया । दिल्ली में गदर खत्म करके तुम ने डोगरा वीरता की पेंच रख ली ।

वीरता की यह पेंच विदेशी आका के लिए स्वामी-भक्ति का कीर्तिमान थी । दूसरी ओर कांगड़ा के डोगरा सपूत बजीर रामसिंह पठानिया ने नूरपुर से आज़ादी की ज्योति प्रज्वलित की । वे अंग्रेज़ आधिपत्य को स्वतंत्रता के लिए चुनौती मानते थे । संभव है उन्हें व्यापक राष्ट्रीय हितों में स्वतंत्रता की परिभाषा ज्ञात न हो । तो भी विस्तारवादी एवं उपनिवेशवादी अंग्रेज़ साम्राज्य से टकराने वाला वह पहला डोगरा योद्धा था । 1848 ई. में उसने जम्मू और नूरपुर के पहाड़ी क्षेत्रों से फौजियों की कमान करते हुए सशस्त्र विद्रोह करके शाहपुर कंढी पर कब्ज़ा किया । नूरपुर रियासत की आज़ादी की घोषणा के साथ ही जम्मू और जसरोटा क्षेत्र के चार सौ मन्हास और पठानिया वंशों के सैनिक मंगल सिंह के नेतृत्व में रामसिंह पठानिया से आ मिले । उधर आज़ादी की इस चिनगारी को बुझाने के लिए जालंधर के कमिशनर और कांगड़ा के डिप्टी कमिशनर फौजी दस्तों के साथ शाहपुर कंढी की ओर बढ़े । इस विशाल सेना के आगे रामसिंह का मुट्ठी भर सैनिकों के साथ टिक पाना संभव न था । इसलिए, उसने किले से निकलकर जंगल में मोर्चे संभाल लिए और शिवा जी की भाँति छापामार युद्ध कौशल का आश्रय लेकर अंग्रेज़ों को अपार हानि पहुँचाई । 1849 ई. में बसोहली रियासत के राजा शेरसिंह ने पाँच सौ फौजियों का एक दल रामसिंह के सपुर्द किया । गुरिल्ला युद्ध जारी रहा । अंततः 'उल्ले दी धार' नामक पर्वतीय स्थल पर आमने-सामने की लड़ाई में क्वीन विक्टोरिया के निकट संबंधी राबर्ट पील का भतीजा कर्नल जान पील और उसका साथी, रामसिंह द्वारा तलवार के घाट उतारे गए । दोनों पक्षों का भारी नुकसान हुआ । रामसिंह ने कांगड़ा, नदौन, डाडा सीबा, गुलेर आदि के राजाओं से सैनिक सहायता की मांग की, परंतु सब ने न कह दी । रामसिंह छिपते-छिपाते कांगड़ा पहुँचे । यहाँ एक ब्राह्मण ने उन्हे शरण दी, किंतु एक राजपूत की गद्दारी के कारण अंग्रेज़ो द्वारा पकड़ लिए गए । तब उन्हें कांगड़ा, कलकत्ता और अंततः सिंगापुर

की जेलों में कैद रखा गया, जहाँ 1858 ई. में उनका देहांत हो गया । स्वतंत्रता के निमित्त अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले मंगल पांडे और तात्या टोपे समान महान स्वतंत्रता सेनानियों की पंक्ति में रामसिंह पठानिया का नाम भी सदा स्मरणीय है ।

रामसिंह पठानिया पर अनेक लोक-गाथाएं समस्त पहाड़ी प्रदेश में प्रचलित हैं । लोक-मानस उसकी वीरता और बलिदान पर बलिहारी है—

"जमदे पकड़ी तलवार राजा,
लहुए दे बगाई दित्ते हाड़ राजा ।
करी कल्ला पठानिया जोर लड़ेआ ।।"

जन्मजात योद्धा रामसिंह पठानिया ने रक्त की धार बहा दी । एक मात्र हिम्मत के सहारे अकेले पठानिया ने वैरी से लोहा लिया ।

लोक-गाथाओं में रामसिंह पठानिया का बलिदान तो जीवित है, परंतु किसी भी कवि ने न तो उनके महान बलिदान पर सहारना के दो शब्द ही लिखे है और न ही ब्रिटिश गुलामी के जूए को उतार फेंकने के लिए दिलेरी से बात ही की है । जम्मू या कांगड़ा में कहीं कोई क़लम आज़ादी की नेमतों का गुणगान करने के लिए नहीं उठी । एकमात्र अपवाद बाबा कांशीराम हैं, जिन्हें स्नेहवश लोग पहाड़ी गाँधी कहते थे ।

रजवाड़ाशाही के दौर में, जम्मू-कश्मीर में आज़ादी का कोई स्वर उभरने न दिया गया, जबकि पड़ोसी राज्य पंजाब में आज़ादी के परवाने निरंतर अपने प्राणों की आहुतियां दिए जा रहे थे । रियासत जम्मू-कश्मीर में देश भक्तों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए महाराज प्रताप सिंह ने एक सरकारी इश्तेहार जारी किया, जिसमें अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध प्रचार करने वालों को कठोर दंड का प्रावधान रखा गया था ।

सामंती सत्ता अपने हितों के अतिरिक्त इंग्लीशिया हकूमत के हितों का बड़ी मुस्तैदी से परिरक्षण कर रही थी । गुलामी-दर-गुलामी का दौर था । प्रथम विश्व युद्ध से लौटने पर रघुनाथ पलटन की

संस्तुति में लिखी गई पंक्तियां गौर तलब हैं—

"हून तुसें जाई अफ्रीका, साधी,
मारी नसाए जर्मन अपराधी ।
फिरी अंग्रेजी दुहाई ।"

कैसी विडंबना है, प्राण न्योछावर किए भारतीय सपूतों ने, किंतु दुहाई फिरी अंग्रेज़ों की । कवि अंग्रेज़ों की दुहाई फिरने में डोगरा सैनिकों के निमित्त बनने पर, उनके अफ्रीका साधने और जर्मन अपराधी को सज़ा देने पर, गौरव का अनुभव करता है । स्पष्टतया यह दुहरी गुलामी की संस्तुति का एक शानदार उदाहरण है । अनपढ़ सिपाही को उस युद्ध का औचित्य समझाने के लिए जिसमें वह सम्मिलित होने जा रहा था, अक्सर कहा जाता कि जर्मन देश का राजा अत्याचार कर रहा है । वह कंस और रावण का अवतार बन कर धरती पर अवतरित हुआ है, जबकि ब्रिटेन नरेश जार्ज धर्म की राह पर चल रहा है । इन भावों की प्रतिच्छाया मथरादास की कविता में स्पष्टतया उभरी है ।

डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र लोकगीतों का अक्षय भंडार है । जहाँ अनेकानेक विषयों पर सुमधुर गीतों की भाव-लहरियां यत्र-तत्र गूंजती सुनाई पड़ती हैं । परंतु यह विचित्र बात है कि रामसिंह पठानिया की उपरिवर्णित गाथा के अतिरिक्त भारतीय स्वतंत्रता की निशानदेही करता कोई अन्य गीत उपलब्ध नहीं होता, जबकि रामसिंह पठानिया के हाथों मारे गए कर्नल जीन पील के विषय में डुग्गर में लोहड़ी पर्व के गीत में व्यंग्यात्मक वर्णन उपलब्ध होता है । यथा—

"घोड़ी पर काठी,
जीनपाल दा हाथी ।"

कारण साफ है कि इस क्षेत्र में आज़ादी के भाव का स्फुरण नहीं होने दिया गया ।

राज-भक्ति की परंपरा :

जम्मू-कश्मीर में आज़ादी के प्रति बे-परवाही का कारण मात्र सामंती सख्तियां ही नहीं हैं । कुछेक और कारणों से भी लोग इस

आंदोलन के प्रति पराङ्मुख रहे हैं । लोग इस भ्रम में थे कि राजा अपना है, इसी संबंध से राज भी अपना है । देर बाद जब यह भ्रम टूटने लगा तो दीनूभाई पंत ने इसे यों व्यंजित किया—

"लोक मीहुने मारदे, ए डोगरें दा राज ऐ,
डोगरें दा हाल मंदा, जुड़दा निं साग ऐ ।"

अर्थात्—लोग ताने देते हैं कि अब डोगरों का राज है, इसलिए डोगरा जाति की पौ-बारह है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि डोगरों की बुरी हालत है । उन्हें खाने के लिए रोटी और शाक तक उपलब्ध नहीं है ।

परंतु यह स्वर तो तब उभरे जब डोगराशाही का ताना-बाना धराशाई होने के लिए चरमरा रहा था । इस से पूर्व, समय के शासक की स्तुति करना डोगरी कवियों के काव्य-सिद्धांतों का अंग बन चुका था ।

कवि महता मथरादास एक निष्ठावान राज सेवक के तौर पर सामंती परंपरा के वाहक बने हुए हैं—

"परताप सिंह महाराज जी देओ सीसां,
जेहुदे राज मिले सुख सारे ।

•••••

सीसां देओ महाराज गी दिनें-रातीं,
करदा पालन असें ब्राह्मनें दी ।
मंगो जै-सिरी राजा साहुब हुन्दी,
नीति सिक्खी जिनें प्रजा सांबने दी ।"

अर्थात्—महाराज प्रताप सिंह को दिन-रात आशिष दीजिए, जिनके राज्य में तमाम सुख मिल रहे हैं । जो दिन-रात प्रजा पालन की नीति पर चल रहे हैं और ब्राह्मणों के हितकारी हैं ।

इसी भाँति पं. संतराम शास्त्री ने लिखा—

"राज तेरो अटल होवे, प्रजा तेरी सुख बसे,
दुश्मनों का नाश होवे, दुनिया में तेरो यश बढ़े ।

••••

जम्मू भूपति नाम हरिसिंह, इति सुमंगल ।"

•••

धन्यवाद हो जयकार हो, प्रभु राज तेरो स्थिर रहे ।

इसी तरह हरदत्त शर्मा ने लिखा—

"तेरी रक्षा करने गितै धारेआ प्रभु अवतार,
दीन-दुखिएं दे दर्दी श्री हरिसिंह सरकार ।"

अर्थात्—महाराज हरिसिंह दीन-दुखियों की सुध लेने वाले हैं । वे हमारी रक्षा के लिए ईश्वर का अवतार बनकर अवितरति हुए हैं ।

इतना ही नहीं, बाद में डोगरी साहित्य में प्रगतिशीलता के संवाहक बन कर उभरे दीनूभाई पंत भी शुरू में इस संस्तुति परंपरा का आश्रय लेने से पीछे नहीं हटे । अपने प्रथम कविता संकलन "गुतलूं" में उन्होंने महाराजा हरिसिंह की स्तुति में लिखा—

"इस ताजे विच दिक्खो दया परमेसरें दी,
कैसा मेल मेली दित्ता, हरिसिंह हीरे दा ।

••••

अस सारे लोक इस जम्मुआ दे रौहुने वाले,
इस शुभ दिनै बिच खुशी ए मनाने आं ।
उस परमेसरें दे तुल्ल महाराजा जी दा,
धन्न-धन्न करि लक्ख जस गान्ने आं ।"

अर्थात्—कश्मीर रूपी ताज पर ईश्वर की कृपा तो देखें कि हरिसिंह के समान हीरा इस में जड़ दिया । हम तमाम जम्मू वासी, आज के शुभ अवसर पर खुशी मनाते हैं और ईश्वर-तुल्य महाराज का यश गाते हुए ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कहते हैं कि हमें ऐसा योग्य राजा दिया ।

इन कुछेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि राज-भगती की मिशाल पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती आ रही है । बीसवीं सदी का कवि वर्ग ही जब सामंतशाही को ईश्वरीय देन वर्णित करने लगेगा तो आज़ादी का निषेध करने वाली शक्तियों के चेहरे से पर्दा कौन उठाएगा । कवि वर्ग ही जब दिग्भ्रांत होने लगे, तब सामान्य जन का क्या हाल होगा । रास्ता दिखाने वाला ही जब राह भूल जाए

तब दूसरों का पथ प्रदर्शन कौन करेगा ।

इस परंपरा में एकमात्र अपवाद जम्मू का एक अल्पज्ञात कवि जबरजंग 'बैहमी' है, जिसने शासक स्तुति का मार्ग त्याग कर जन-साधारण की आवाज़ बुलंद करने का साहस किया, जो उस समय की कवि परंपरा के प्रति असहमति का स्पष्ट स्वर था । महाराज हरिसिंह जब गोल मेज़ कांफ्रेंस में भाग लेने गए हुए थे, तब अंग्रेज़ों के इशारे पर जम्मू में सांप्रदायिक तनाव पैदा किया गया और महंगाई आसमान छूने लगी । तब दलित वर्ग के इस कवि ने अपनी कविताओं में वस्तु स्थिति को प्रकाशित किया—

"आ महाराजेआ, दिक्ख जम्मू,
परजा कियां तेरी घबराई दी ऐ ।
दऊं सेर रपेऽ दी निं कनक थ्होंदी,
शउकारें लुट्ट मचाई दी ऐ ।
मिलन पर्चियां नेईं गरीबें गी,
तेरे कंटरोल नै न्हेरी पाई दी ऐ ।
रली करी मनिस्टरें तेरें दे,
मिल्ल आले नै कनक छपाई दी ऐ ।"

अर्थात्—हे महाराज ! तू जम्मू आकार देख तेरी प्रजा किस हाल में है । रुपए का दो सेर गेहूँ नहीं मिलता, साहूकारों ने लूट मचा रखी है । राशन कंट्रोल विभाग ने अंधेर मचा रखा है, गरीबों को पर्चियां नहीं मिलतीं । तेरे मंत्रियों के साथ मिलकर मिल वाले ने तमाम गेहूँ छिपाकर अभाव की स्थिति पैदा कर दी है ।

परिवर्तित परिदृश्य और सामंती मोहभंग :

जम्मू में आज़ादी के प्रति विकलता के नदारद होने के पीछे कुछेक कारण इस तरह गिने जा सकते हैं—

1. जन-मानस में प्राचीन संस्कारों की बहुलता, जिनके अनुसार राजा ईश्वर का अवतार माना जाता है ।
2. रूढ़िवादी दृष्टिकोण के कारण जन-मानस का परिवर्तन के प्रति निरुत्साही होना ।

3. यह दिग्भ्रम कि डोगरा कौम का राज है ।
4. अधिकांश जनता का अनपढ़ होना ।
5. सामंती व्यवस्था का कड़ा रवैया ।
6. दलित और मज़दूर वर्ग का पास-पड़ोस के प्रदेशों में हुए परिवर्तन से बे-खबर होना ।

अज्ञानता का गहरा अंधकार था । रियासत के सुवर्ण और गैर-सुवर्ण वर्ग युगों से भ्रांति में लीन थे और सामंतशाही जुए को खुशी से पहने हुए थे । लोग गरीबी के कारणों के प्रति अनभिज्ञ थे । रियासत का प्रत्येक व्यक्ति दुहरे भ्रम से ग्रस्त था—यह कि रियासत में मात्र राजा का राज्य है । अंग्रेज़ों का राज्य पंजाब तक है और यह कि हिंदू होने से राजा अपना है, राज्य हिंदुओं के हाथ है । कश्मीरी हिंदू भी इसी सुखद भ्रम में जी रहे थे । जम्मू के डोगरा हिंदुओं और डोगरा मुसलमानों के लिए यही काफी था कि राजा डोगरा है । वस्तुतः रजवाड़ाशाही के दौरान हिंदू और मुसलमानों में मिसाली सौहार्द था । उसमें सांप्रदायिकता सिर ऊँचा नहीं उठा पाई थी । तो भी यह तथ्य है कि महाराज सरकार मात्र अंग्रेज़ी हितों की चौकस रक्षक मात्र थी । इन्हीं कारणों से यहाँ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत नहीं हो पाई ।

डोगरा लोग उपरोक्त कारणों से एक स्वप्न-संसार में जी रहे थे । बदली हुई परिस्थितियों से वे इस कद्र अपिरिचित थे कि भारत की आज़ादी के साथ ही चरमरा कर टूटे डोगरा राजतंत्र ने एकाएक उन्हें मोह-भंग और स्तब्धता की स्थिति में ला खड़ा किया । जम्मू में समाज के किन्हीं वर्गों को यह यथार्थ स्वीकार करते लगभग एक दशक गुज़र गया कि वास्तविकताएं बदल चुकी हैं और यह कि तथा-कथित डोगरा राज, डोगरी भाषी लोगों का राज न होकर एक छोटे-से सामंती परिवार का राज था । किन्हीं लोगों के लिए यह वस्तु-स्थिति अस्वीकार्य थी कि रियासत पर अब कश्मीरी शासन चलाएंगे । जम्मू के डोगरों को बदली हुई परिस्थितियों में एक जबर्दस्त सांस्कृतिक झटका लगा था । पुरानी पीढ़ी के लोग जिनकी तमाम निष्ठाएं वंशानुगत राज परिवार के प्रति चली आ रही थीं, बदले

हुए परिदृश्य को स्वीकार न कर पा रहे थे । इस पीढ़ी के लोगों में डोगरी कवि शंभुनाथ शर्मा भी थे जो आरंभ में इस परिवर्तन के कट्टर विरोधी थे, परंतु बाद में बदले हुए राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य को कुछ बरस मौन रहकर परखने के उपरांत कविता के माध्यम से मुखर हुए । एक विचार जो बार-बार हृदय में उमंग कर उनकी कलम की नोंक पर टिक जाता—वह था बदलता हुआ समय । पाँचवे दशक के अंतिम वर्षों में राजनीति के परिवर्तित समीकरणों ने ऐसा स्वरूप धारण किया जिन्हें कवि ने जीवन मूल्यों का अवमूल्यन माना ।

ऐसा सुनने में आता है कि शुरु-शुरु में शंभुनाथ ने रूढ़िबद्धता का परिचय देते हुए, रजवाड़ाशाही तथा राजतंत्र की स्तुति में कुछेक कविताएं लिखी थीं, जिन्हें बाद में भूतपूर्व महाराजा हरिसिंह की सेवा में बंबई में रहते हुए कटु अनुभवों के दृष्टिगत उन्होने नष्ट कर डाला था । आगे चलकर किसी की स्तुति अथवा निंदा के बजाय अपने विचारों और मानसिक उद्वेलनों को कविताबद्ध करने लगे थे ।

राष्ट्रीय उद्भावना :

बहरहाल, स्वंत्रता के उपरांत, कुछेक कवियों ने आज़ादी, अहिंसा और देश-प्रेम के मूल्यों पर अपनी कलम चलाई है । परंतु, यह बात साफ है कि डोगरी कविता में राष्ट्रवाद दो सतहों पर खड़ा दिखाई देता है । एक वह जिसे हम 'स्थानीय राष्ट्रवाद' कह सकते हैं और जिसमें मात्र डुग्गर की स्तुति गाई जाती है । राष्ट्रवाद का दूसरा धरातल वैचारिकता की दृष्टि से व्यापक होने के कारण 'व्यापक राष्ट्रवाद' कहा जाना चाहिए । इसमें भारत-भूमि का गुणगान किया गया है । किंतु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कहीं-कहीं स्थानीय राष्ट्रवाद भी व्यापक राष्ट्रवाद का परिपूरक बन जाता है । शंभुनाथ ने अपनी कविता 'मेरा डुग्गर' में जन्म-भूमि की वंदना से आरंभ करके, इसके अमूल्य प्राकृतिक उपादानों एवं वरदानों की स्तुति करते हुए राष्ट्र के लिए प्राणोत्सर्ग का संकल्प

प्रकट करके संकुचित स्थानीय राष्ट्रवादी विचारधारा का व्यापक राष्ट्रवाद में समावेष्टन किया है ।

कवि व्यक्तित्व पर प्रभाव :

शंभुनाथ के कविता-व्यक्तित्व के निर्माण में इस सदी के पूर्वार्ध की परिस्थितियों, समाजिक मर्यादाओं और सांस्कृतिक मूल्यों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । उनकी कविता में प्रतिबिंबित वैचारिकता वस्तुतः उनका मानसिक द्वन्द्व ही है जो संयमित सोच बनकर धारा-प्रवाह प्रस्फुटित हुआ है । मानस-पटल पर अंकित समस्या की पड़ताल के बाद अपनी प्रतिक्रिया को उन्होंने शाब्दिक क्रम दिया है ।

शंभुनाथ के व्यक्तित्व के निर्माण में जिन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है वे डोगरा राजवंश की तीन-चार पीढ़ियों द्वारा प्रभावित परिस्थितियां रही हैं । वास्तव में पाँचवें दशक के अंत तक वे आकंठ सामंती मानसिकता में डूबे रहे थे । डोगरा सामंतशाही का टूटना उनके लिए एक बहुत बड़ा सदमा था ।

"समय राजा को सड़क का आदमी बना देता है । कोई वस्तु स्थिर नहीं है"—इस दृष्टिकोण ने उनके मानस में गहरी जड़ जमा ली थी । निजी जीवन में मिलने वाली असफलताओं की तुलना वे इस दृष्टिकोण से करके आत्म-तुष्टि पा लेते थे । सन् 47 के आस-पास के वर्षों में परिवर्तन के तीव्र झंझावात के समक्ष वे अवाक् मूक-द्रष्टा बने खड़े थे । असमंजस की स्थिति ने उन्हें ज़्यादा ही अंतर्मुखी बना दिया और वे पूजा-पाठ में अधिक समय लगाने लगे थे । बढ़ी हुई धार्मिक निष्ठा और निजी जीवन की अपूर्ण अभिलाषाओं के कारण वे कविता की ओर प्रवृत्त हुए । अंततः आत्माभिव्यक्ति का साधन बनने पर कविता उनके लिए सुख का सागर सिद्ध हुई । मित-भाषी शंभुनाथ ने राम कथानक को संबल बनाकर अपने अंतस् के उलझनपूर्ण द्वन्द्वों से राहत की राह पा ली थी । उनके लिए यह दृष्टांत बहुत बड़ा संबल था कि राम को भगवान होकर जब संसार में दुःख भोगना

पड़ता है तो अंकिचन मानव की क्या बिसात । डोगरी में रामायण की उद्‌भावना की पृष्ठभूमि में यही मनोवैज्ञानिक शक्ति कार्यरत रही है ।

स्वतंत्रता से पूर्व वे रजवाड़ाशाही के कट्‌टर समर्थक तथा राजवंश के प्रशंसक रहे थे । वस्तुतः उनका परिवार रजवाड़ाशाही प्रशासन से अपने पीढ़ियों पुराने संबंधों से बंधा वफादारी निभा रहा था । आज़ादी के उपरांत निजी तौर पर वे नई हवा के समर्थक न थे और रियासत के राजनीतिक परिवर्तन से अत्यंत क्षुब्ध थे । व्यक्तिगत वार्तालाप में वे नए दौर की निंदा किया करते, परंतु इन अनुभूतियों को उन्होंने शब्दबद्ध नहीं किया, जबकि उनके कवि मित्र अलमस्त ने अपने ऐसे ही विचारों को बेबाकी से शब्दों का बाना पहनाया है ।

शंभुनाथ स्वतंत्रता के साथ रजवाड़ाशाही की समाप्ति को, डोगरा कौम के ह्रास का आरंभ मानने लगे थे । इसी वजह से उन्होंने अंतिम डोगरा नरेश महाराज हरिसिंह के पास बंबई में उनके निजी प्रबंध विभाग में जाना पसंद किया था । वहाँ से लौटने पर इन्हें डोगरी संस्था के मंच से अपनी बात कहने का अवसर प्राप्त हुआ । डोगरी संस्था से इनका संपर्क इनकी वैचारिकता को परिपक्वता प्रदान करने का साधन बना ।

प्रगतिवादी प्रवृत्ति के साहित्य में संभ्रांत वर्ग के बजाय मज़दूर-किसान एवं मेहनतकश वर्ग को प्रतिष्ठित किया जा रहा था । स्तुत्य वह है जो खेतों में फसल उगाता है, वह नहीं जो काँच के महलों में बैठा मौज उड़ाता है । सुख का सृजक वह है जो अपने खून-पसीने से साधनों को उत्पन्न करता है, न कि वह जो मात्र शोषणवादिता के उपक्रम से उनका उपभोग करता है ; इस बात की समझ आते ही शंभुनाथ ने कविता में जीवन के कटु अनुभवों को, मेहनतकश के दुःखों को तथा गरीबों के यथार्थ को अपनी रचनाओं में समुचित स्थान प्रदान किया । इस वैचारिकता के पनपते ही रजवाड़ाशाही की टूटन को कवि शंभुनाथ सहजता से हृदयंगम तो कर पाए, किंतु प्रगतिवादी धारा में कुछ देर वह

ज़रूर बहते रहे, परंतु साम्यवादी न हुए । प्रगतिवाद को उन्होंने खरी और सच्ची बातें कहने का एक माध्यम मात्र माना ।

परंतु यह स्पष्ट है कि 1950-55 ई. तक वे अर्वाचीन मूल्यों के कट्‌टर विरोधी और परंपरागत जीवन शैली के प्रबल समर्थक बने रहे । कभी-कभार अतीत के प्रति मोह प्रकट करके अथवा सामंती मूल्यों की प्रशंसा करके वे पाँचवें दशक के उपरांत उभरे नैतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक संकटों के प्रति अपनी अरुचि प्रकट कर दिया करते । वे अपने समय के प्रति सजग रहे । आज़ादी के संक्रांतिक वर्षों में अर्जित अनुभवों का कविता में उपयोग करके उन्होंने विचार-संपदा को काव्य-संपदा में परिवर्तित करने का महती कार्य सफलता से संपन्न किया ।

जीवन-वृत्त

प्रवृत्तिवाद और पलायन :

"सुनाऊं क्या कहानी अपनी ए तकदीर,
हर मोड़ पर नित पैंतरे बदलती है ।"

—शंभुनाथ

शंभुनाथ ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर अपने जीवन और वैचारिकता के विषय में बात की है । इन अंतः साक्ष्यों के आधार पर यदि शंभुनाथ के कृतित्व का लेखा-जोखा किया जाए तो उसे उनके व्यक्तित्व का दर्पण मानना पड़ेगा ।

अपने जीवन को वे अपूर्ण अभिलाषाओं की व्यथा-यात्रा मानते हैं । उनकी क़लम से बार-बार यह भाव निःसृत होने लगता है कि सदा दूसरों के लिए खटते हुए, अपनी एक भी अभिलाषा पूरी नहीं हो पाई । कवि की इस कमज़ोर रग का रह-रह कर दुखने लगना, मुख्यता इस बात की पुष्टि करता है कि उसने जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं । कड़वाहटों का उसके पास ऐसा भंडार है जो रह-रह कर वर्तमान को सालने लगता है । यह बोध रहते हुए भी कि मानव जीवन जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में फैला अभिलाषाओं का रेगिस्तान है, कवि का बारंबार मृगतृष्णा से व्याकुल हो उठना, उसके जीवन की प्रवंचनाओं की पुष्टि करता है ।

सुख-दुख की धूप-छाँव में जी रहा मानव याज्जीवन अभिलाषाओं के गहन वन से बाहर निकल नहीं पाता । सामाजिक ढाँचे में उपलब्ध साधनों के अभाववश और व्यक्ति द्वारा वांछित से अधिक के संग्रह की प्रवृत्तिवश अभिलाषा पूर्ति के क्षेत्र में ऐसा व्यक्ति सदा घाटे में रहता है जो सामाजिक एवं नैतिक मर्यादायों का सम्मान करता रहे । शंभुनाथ इन मर्यादाओं के बंधन में रहकर आत्मिक अहं और

गौरव के साथ-साथ अभिलाषाओं की पूर्ति ही चाहते थे, जिसका संयोग विरल ही होता है । अधिकांश कष्ट, शारीरिक एवं मानसिक वेदनाएं प्रायः अधूरी अभिलाषाओं से उपजती हैं । किंतु यह भी सत्य है कि बिना अभिलाषाओं के टकराव के न तो साधन उत्पन्न होते हैं और न मानवता ही विकास की ओर बढ़ पाती है । अध्यात्मवाद में संतोष को सुख का मूल कहा गया है और इसके लिए अनिवार्य शर्त है अभिलाषाओं का त्याग । परंतु प्रवृत्तिवाद भौतिक दृष्टि से इस आचरण का अनुमोदन नहीं करता । उसका मुख्य तर्क यह है कि यदि मानव में इच्छा, आशा और अभिलाषा के बीज-बिंदु न होंगे तो यह जीवन किस काम का । शंभुनाथ के जीवन का पूर्वार्ध प्रवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण का अनुगामी है । वह जीवन के राग-रंग, सुख-ऐश्वर्य एवं सफलता का आकांक्षी है ।

निरंतर दुःख और मानसिक क्लेश बने रहने के कारण वे धीरे-धीरे नियतिवादी होने लगते हैं । रियासत की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में हुए आमूल-चूल परिवर्तन के कारण अतीत से उन्हें विदारक मोह-भंग हुआ था । निराशा के गहन गर्त में पड़े वे निरंतर मनन करते रहते । उसकी कविताओं में इस गहन चिंतन का सूक्ष्म अंकन जहाँ तहाँ देखा जा सकता है । जीवन के उत्तरार्ध में जब निराशा और मोहभंग की स्थिति को कविता के माध्यम से व्यक्त होने का अवसर मिला तो यह स्थिति भाग्यवाद में परिवर्तित हो गई । अंततः भाग्यवाद से अध्यात्मावाद की ओर बढ़ चले । रामायण लेखन में उनकी प्रवृत्ति वस्तुतः नियति से मिली निरंतर पराजय की प्रकृत परिणति है । अतएव राम-कथा उनके लिए मनस्तोष की शरण-स्थली भी है ।

जीवन की परिपक्व दशा में अध्यात्मवाद की ओर उन्मुखता एक प्रकार से उनकी प्रवृत्तिवादी दर्शन से निवृत्तिवादी दर्शन की ओर की उन्मेष यात्रा है । इस यात्रा में अधूरी अभिलाषाओं की उड़ान थम कर यथार्थ का धरातल तलाशने लगती है । संभवतया रामायण के लेखन से कवि को व्यक्तिगत जीवन की असफलताओं का समाधान मिला था । यदि सर्वशक्तिमान प्रभु भी इस धरती पर अवतरित

होकर दुःख झेलने को बाध्य हैं तो साधारण जन की बिसात ही क्या । अतएव रामायण का लेखन शंभुनाथ के लिए निजी संवेदना को उदात्त धरातल प्रदान करने का माध्यम बनता है ।

उनकी वैचारिकता जहाँ विभिन्न रचनाओं में विस्तार पाती है, वहीं उनका जीवन भी इनमें साथ-साथ प्रतिबिंबित हुआ है । गृहस्थी संबंधी एक कविता मे कवि ऐसे गृहस्थ जीवन को धिक्कारता है जो अभावों और निर्धनता से घिरा हुआ हो । किंतु वह ऐसे व्यक्ति को धन्य-धन्य कहना नहीं भूलता जो इस कठिन चुनौती से हंसकर जूझता हो । यदि कवि सार्वजनीन दुःख एवं कलेश की बात करता है तो उसका निजी अनुभव भी अनायास ही उसमें प्रतिफलित हो उठता है । दुःख, पीड़ा, मानवीय वेदना अथवा कष्टों पर लेखनी चलाते हुए वह सहसा भावुक होकर विषय को निजता के द्रष्टिकोण से प्रस्तुत कर देता है । कतिपय कविताएं अथवा कविता-अंश मूलतः आत्मपरक ही हैं ।

कवि की मान्यता है कि ऐसा जीवन अकारथ है जो पूरी उम्र पिसौना पीसते गुज़र जाए । जीवन रूपी भारी-भरकम चक्की मृत्युपर्यंत काम-काज में व्यस्त रहती है । यह ऐसी विचित्र चक्की है, जिसे घुमाने के लिए कोई हत्थी तक नहीं लगी हुई । यह स्वतः प्रवृत्त है । इस कविता में कवि के दृष्टिकोण की नियतिवादी परिणति स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है ।

जीवंत संघर्ष गाथा :

इनका जन्म 5 दिसंबर 1906 ई. को पूर्णिमा पक्ष में गुरुवार के दिन हुआ । पिता पं. गंगाराम जम्मू नगर से पूर्व दिशा में लगभग अढ़ाई कोस दूर स्थित एक सुरम्य गाँव पलौहड़ा में जम्वाल जाति के ब्राह्मण पं. चक्रपाणि के चौथे पुत्र थे । जम्वाल ब्राह्मण जम्मू के आदि ब्राह्मण माने जाते हैं । प्राचीन काल में यह राजवंश के गुरु माने जाते थे ।

पलौहड़ा का शाब्दिक अर्थ है, पलाश वन । पलौहड़ा के इस सुप्रसिद्ध घराने की एक विशेषता यह रही है कि इसकी प्रत्येक शाखा

में प्रायः एक न एक कवि ज़रूर हुआ है । इस वंश की विभिन्न शाखाओं में हुए सुप्रसिद्ध कवियों में हरिशचंद्र, हरदत्त शर्मा, गंगाराम, शंभुनाथ, रामनाथ तथा पीतांबर पारखी के नाम उल्लेख योग्य हैं ।

शंभुनाथ के पिता पं. गंगाराम श्रीनगर के तारघर में तारबाबू थे । सन् 1908 ई. मे जब शंभुनाथ मात्र अढ़ाई वर्ष के थे इनकी माता की मृत्यु से ममता की स्नेहिल छाया इनके सिर से हट गई । तदुपरांत इन्होंने कुछ दिन अपनी बड़ी बहन ईशरो के संग दादी मां की दुलार भरी गोद में गुज़ारे । पिता ने भरसक स्नेह दिया, किंतु मां की ममता की भरपाई दुनिया की कोई वस्तु कर पाती तो मां, ममता और स्नेह का शाशवत प्रतीक क्योंकर बनती । शिशु शंभु के पालन-पोषण और देखभाल के लिए पिता ने दूसरा विवाह किया ।

नई मां से और उससे हुए बच्चों से इन्हें भरपूर स्नेह और आदर मिला परंतु मां के देहांत ने शंभुनाथ के बाल-व्यक्तित्व में जो शून्य-सा पैदा कर डाला था—वह जीवन भर उन्हें सालता रहा । उनमें अंतर्मुखी व्यक्तित्व विकास पाने लगा था । कष्टों को हंसकर झेलने और हृदय मे समाने के वे अभ्यस्त होते चले । बाल मानस में उभरे शून्य से उन्हें बहुत बाद में मुक्ति मिली थी, जबकि वे कविता द्वारा अपनी घुटन और अंतर्वेदना को व्यक्त करने लगे थे ।

पर-दुःख कातरता, मानवीय कष्ट, अभाव और वंचनाओं की काव्याभिव्यक्ति उनकी कविता की मानो धड़कन ही है । इसलिए यदि माना जाए कि छुटपन में मातृ-वात्सल्य के अभाव ने उन्हें तकलीफों को शिद्दत से अनुभव करने की आदत डाल दी थी तो शायद गलत न होगा ।

पिता का स्थानांतरण होने से शंभुनाथ भी उसके संग अस्कर्दू पहुँचे । वहां छः वर्ष की आयु में इन्हें स्कूल में प्रविष्ट कराया गया । पिता जो कि आरंभ में 'सिग्नेलर' और 'हेड क्लर्क' रह चुके थे बाद में 'टेलीग्राफ मास्टर' और अंततः 'स्टेट टेलीग्राफ मास्टर' के रूप में राज्य सेवा में रहे । उनके साथ शंभुनाथ को रियासत के दूर-दराज इलाकों में रहने और वहाँ का जनजीवन देखने का

अवसर मिला । अस्कर्दू के उपरांत इनका शिक्षण श्रीनगर और जम्मू में हुआ । 1922-23 ई. में इन्होंने जम्मू के प्रसिद्ध 'रणवीर हाई स्कूल' नामक विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

मैट्रिक में पढ़ते हुए 17 वर्ष की आयु में इनका विवाह 'हैल जट्टा' नामक गाँव के इक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ । विवाह के तीन वर्ष बाद गौना हुआ । मैट्रिक के उपरांत 'प्रिंस ऑफ ह्वेल्ज़' नामक कालेज में फर्स्ट इयर में प्रवेश लिया । कालेज जीवन में हाकी के एक नंबर खिलाड़ी माने जाते थे और कालेज टीम का प्रतिनिधित्व करते थे । एक दिन खेल के सिलसिले में कालेज के क्रीड़ा इंचार्ज से तू-तू, मैं-मैं होने पर इन्होंने न केवल हाकी टीम छोड़ दी, बल्कि कालेज भी छोड़ दिया ।

स्वभाव के मृदु थे, किंतु जहाँ अन्याय होता देखते वहां तैश में आ जाते । परिणाम की चिंता किए बिना झगड़ पड़ते । अब तक इनका रोबीला-दंबग व्यक्तित्व निखरने लगा था । लंबा कद-बुत, गठीला और कसरती शरीर और भारी, खनकदार, ओजस्वी आवाज़ । फुर्तीली चाल-ढाल से यों दिखते मानो कोई फौजी अधिकारी हो । रियासती सेना में इन्होंने लैफ्टीनेंट के पद के लिए प्रयत्न भी किया था । हर भाँति से योग्य होते हुए भी इन्हें सेना में सेवा का अवसर मात्र इस वजह से न दिया गया कि यह जाति के ब्राह्मण थे । इसी तरह वन विभाग में रेंजर के पद के लिए परीक्षा दी । परंतु, दौड़ के दौरान पाँव में टूटे शीशे की किरच से गहरा घाव हो जाने से बेहोश होकर गिर पड़े । अतएव नियति ने आड़े आकर यहाँ भी चयन में बाधा खड़ी करदी ।

1925 ई. में रियासत के उद्योग और व्यापार विभाग में साढ़े तीन वर्ष के लिए बतौर परिवीक्षार्थी कार्य किया । तदुपरांत यह काम रास न आया तो तार सिग्लेनर का काम सीखने लगे । अभी प्रशिक्षण चल ही रहा था कि इन्हें इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस के कार्यालय में क्लर्क की नौकरी प्राप्त हुई । वह स्वयं कहते कि मेरी जीविका लगाने का श्रेय आई.जी. पुलिस ठाकुर गंधर्व सिंह पठानिया को जाता है । बाद में ट्रेफिक पुलिस में स्थानांतरण हुआ जहाँ से

तीन वर्ष के बाद इन्हें गुप्तचर विभाग में भेजा गया । यहाँ एक वर्ष तक रहे ।

क्लर्की करते हुए इनका खेल प्रेम यथावत् जारी था । फुटबाल की क्षेत्रीय प्रतियोगिताओं में रियासती पुलिस टीम का प्रतिनिधित्व करते रहे ।

स्वभाव से चूंकि तेज़-तर्रार थे, इसलिए तुनक-मिजाज़ लोगों से इनकी बन नहीं पाती थी । एक बार ट्रेफिक पुलिस के सुप्रिंटेडेंट से कहा-सुनी हो गई तो रियासती मंत्री खुसरो जंग के सचिव चेतराम चोपड़ा की सिफ़ारिश से 'मनिस्टर इन वेटिंग' के कार्यालय में बतौर अकौंटेंट नियुक्त हुए ।

1948 ई. में जब महाराजा हरिसिंह सत्ता-च्युत होकर बंबई में निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए गए तो शंभुनाथ भी उनके निजी स्टाफ में बंबई चले आए । वहाँ कुछेक वर्ष काम किया । फिर जम्मू में रीजेंट डॉ. कर्णसिंह के कार्यलय में स्थानांतरित कर दिया गये । यहाँ से यह प्रथम जनवरी 1961 ई को सेवा निवृत्त हुए ।

लगातार तकलीफों का सामना करते हुए संघर्षरत रहने का स्वभाव बन चुका था । वे उन लोगों में से नहीं थे जो सेवा निवृत्ति के पश्चात् ब्रेकार बैठकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगते हैं । इसलिए मृत्यु-पर्यंत एक भी दिन वे बेकार न रहे । सेवा निवृत्ति के पश्चात् उन्होंने स्वर्ण थियेटर और फिर इस्पात निर्माण उद्योग में बतौर अकौंटेंट काम किया । जीवन के अंतिम दिनों में वे 'ईस्टर्न ट्रेडर्ज़ जम्मू' में कार्यरत रहे । 4 जून 1977 ई. को 72 वर्ष की आयु में हृदय गति रुक जाने से इनका देहांत हुआ । इससे पूर्व इन्हें पहला दिल का दौरा 1972 ई. में तब पड़ा जब यह दत्त-चित होकर म्यूनिख ओलिम्पिक्स मैच की रेडियो कमेंट्री सुन रहे थे । पेनल्टी कार्नर को गोल में न बदल पाने से भारत की हार की खबर पाकर उन्हें तीव्र दिल का दौरा पड़ा था और अंततः दूसरी बार तब पड़ा जब उन्होंने अपनी वसीयत के संबंध में अपनी छोटी बेटी को जम्मू बुलाया था । अपनी बेटियों को ही वे पुत्र मानते थे । बेटी को

हृदय से लगाते हुए खुशी और स्नेह के प्रबल उछाह में उनकी हृदय गति थम गई ।

यदि कम शब्दों में शंभुनाथ के जीवन-वृत्त को व्यक्त करना अभीष्ट हो तो उन्हें जीवंत संघर्ष कहना सर्वाधिक उपयुक्त होगा । जैसे-जैसे उम्र बढ़ रही थी, कवि शंभुनाथ में यह भावना घर करती जा रही थी कि आयु थोड़ी है और काम बहुत ज़्यादा हैं । इसीलिए उन्होंने इस भाव की व्यंजना अपनी कविताओं में भी की । इस अनुभूति में चाहे उस मंजिल की ओर इशारा है जहाँ श्वास पूर्ण विराम पा लेते हैं—परंतु, व्यर्थ में बीत चुकी जीवन अवधि की ग्लानि कवि को निरंतर सालती रही है । इसलिए वह मृत्यु भय से नहीं, अपितु पश्चाताप बोध से पीड़ित है । उसे अहसास है कि आज, कल और परसों आते हैं, दिन गुज़र जाते हैं । समय का पहिया अबाध गति से घूमता रहता है । आदमी निरर्थक रोने-धोने में जीवन व्यतीत कर देता है । लगातार बहते नीर की भाँति आयु का प्रवहमान दरिया, बिन रुके आगे बढ़ता रहता है । बचपन तरुणाई में और जवानी बुढ़ापे में बदल जाती है । दुनियादारी के काम-धंधों में उलझा आदमी अपना मूल उद्देश्य भुला देता है । फिर बुढ़ापे में जब ठोकर लगती है तो उसकी होश लौटती है । उसे लगता है चार दिनों की जीवन अवधि कितनी कम है । ज़िंदगी में किए जाने योग्य कामों की भरमार है । हाथ-पाँव पटकते उम्र बीत जाती है और सामने मौत खड़ी दिखाई देने लगती है ।

इस भावानुभूति में जीवन के प्रति उन्मुखता की बात भुलाकर कवि जीवन के मूल ध्येय की ओर ध्यान केंद्रित करता है । यदि जन्म और मरण के बीच की अवधि का सदुपयोग न किया जाए तो जीवन का प्रयोजन क्या रह जाएगा । शरीर धारण करके मर जाना ही सब कुछ नहीं है । वह प्रवृत्ति में निवृत्ति की तलाश को भी महत्त्वपूर्ण मानता है । धनोपार्जन प्रवृत्तिवाद का आवश्यक अंग है, परंतु कवि की धारणा है कि यह धन प्रभु भक्ति का होना चाहिए । कवि ग्रंथों का पठन-पाठन भी आवश्यक मानता है । उसके कथानुसार इसी से कल्याण संभव है ।

जीवन विषयक उनकी धारणाएं बड़ी सरल हैं । उनका कथन है कि प्रत्येक जीव यहाँ विगत जन्म के कर्मों का ऋण उतारने आता है । 'मुझे भी बेटियों का कर्ज़ा देना है । जैसे ही यह उतरेगा वापस लौटने की तैयारी होने लगेगी । जो कुछ होता है वह प्रभु इच्छा का प्रतिफल है ।'

घरेलू सुख न मिल पाने को भी वे प्रभु की इच्छा कहकर झेल जाते । एक बार श्रीनगर में इनकी गर्भवती पत्नी द्वारा कड़ाके की ठंड में नहा लेने से गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो गई थी । इस मर्माघात को बर्दाशत न करके वह पगला गई थी । मृत्यु-पर्यंत वह 25-26 वर्ष तक इसी दशा में रही । वे निरंतर उसकी चिंता में निमग्न रहते और भरसक उसकी देखभाल करते । 1975 ई. में धर्मपत्नी का देहांत होने के बाद वे बराबर गंभीर और संजीदा रहने लगे थे । कभी-कभार होठों से यह शब्द फिसल आते—"वह वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रही है ।" अंततः दो वर्ष बाद वे चल बसे ।

विमाता से इन्हें पूर्ण वात्सल्य और अपनत्व मिला था । विमाता से हुए दोनों पुत्र कहने भर को सौतेले भाई थे, किंतु यदि कोई यह शब्द उनके सामने कह देता तो यह नश्तर की तरह इन्हें घायल कर जाते । वे दोनों भाई इन्हें परिवार का मुखिया मान कर यथोचित सम्मान देते और प्रत्येक काम इनकी आज्ञा से करते ।

शंभुनाथ यद्यपि शुरु में स्वयं गरीबी से दो-चार रहे थे तो भी आजीवन त्याग भावना और हृदय की विशालता का उदाहरण बने रहे । 'टांगे वाली गली' में एक छोटा-सा पैतृक मकान था, जिसे इन्होंने सौतेले भाई देवराज के लिए 1955 ई. में छोड़ दिया और स्वयं अलग मकान बनाकर रहने लगे । देवराज से बड़े रामनाथ से इन्होंने कहा कि तुम्हारे में सामर्थ है, इसलिए अलग मकान बना कर रहो ।

विमाता इन्हें सगे पुत्रों से बढ़कर प्यार करतीं । इसीलिए शंभुनाथ की मृत्यु पर उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और ठीक एक महीने बाद उनका देहावसान हुआ ।

सामंती दौर के संयुक्त पारिवारिक ढाँचे में व्यक्ति किन्हीं कुल

मर्यादाओं को विरसे में पाता था । निजता के स्थान पर सामूहिकता, स्वार्थ के स्थान पर परार्थ की भावनाओं का आधिक्य था । छोटे-बड़े के आदर और परस्पर स्नेह के वातावरण में डोगरा समाज बंधा हुआ था । पं. गंगाराम का परिवार मध्यवित्त परिवार था । परंपरागत रिवायतों को निभाने के लिए तमाम आमदनी खर्च हो जाती थी ।

इमानदारी, कर्तव्य-निष्ठा एवं चारित्रिक दृढ़ता के गुण शंभुनाथ ने पारिवारिक विरासत में पाए थे । वे नफासत-पसंद थे । अच्छा खाना-पीना और पहनना, डोगरा संस्कृति के सलीके पर चलना, उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी । ब्रीचिस कोट, चूड़ीदार पायजामा और डोगरा पगड़ी उनके व्यक्तित्व पर खूब फबती थी । सामंती दौर में जब कभी राज दरबार सजता, कोई विशेष कार्यक्रम होता अथवा राज परिवार के किसी व्यक्ति का जन्म दिन समारोह होता तो युवराज कर्णसिंह को पगड़ी बंधवाने के लिए इन्हें बुलावा भेजा जाता ।

शंभुनाथ को सुर और संगीत का स्वानुभूत ज्ञान था । आवाज़ मिठास भरी थी । बाद में पं. दुर्गा दत्त के संगीत विद्यालय में संगीत का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया । डोगरी कवि यश शर्मा की बेटी सीमा शर्मा जो आज भारतीय गायकी में विशेष, स्थान बना चुकी है, को संगीत का प्रारंभिक ज्ञान शंभुनाथ से प्राप्त हुआ था । वे कविता पाठ के समय माईक की आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे । जिन नाटकों में वे अभिनय करते थे, उनमें गीत भी स्वयं ही गाते । उनकी सुरीली आवाज़ में गाए गए गीत प्रायः नाटक का उत्कर्ष बन जाते ।

वे अच्छे धावक थे । अखाड़े में प्रायः दंड पेलने भी जाया करते । शरीर पर लगी मिट्टी मानो उनकी देह का शृंगार थी । एक अच्छे खिलाड़ी की भावना से वे सदा प्रफुल्ल बने रहते । हृदय में वेदना होते हुए भी चेहरे पर सदा मुसकान खिली रहती । घर में गाते-गुनगुनाते दाखिल होते और खिलखिलाते हुए बाहर आते । बड़ों का सदा आदर-सत्कार करते । एक बार अपने वृद्ध ताऊ पं. संतराम वेदपाठी को वे पुरमंडल स्थित सत्यवती की

पहाड़ी पर एक ही सांस में उठाकर ले गए थे । इसी पहाड़ी पर जम्वाल ब्राह्मणों की कुलदेवी की प्राचीन देहरी है । ब्राह्मणों की इस प्रशाखा की तमाम मांगलिक कुलरीतियां इसी देवी से संबद्ध हैं ।

कुलदेवी सत्यवती की कथा :

जम्वाल घराने के एक पुरखे का जन्म गंगोचक नामक गाँव में हुआ । प्रथम विवाह में सन्तान प्राप्त न होने पर इन्होंने दूसरा विवाह 'भटोली गढ़ोटा' गाँव के मंगोत्रा कुल में रचाया । इनकी बारात तिरछा नामक क्षेत्र से गुज़र गई, परंतु इनका कुल पुरोहित पीछे छूट गया । जब पुरोहित तिरछा क्षेत्र से गुज़रा तो स्थानीय जागीरदार ने बारात का राह-गुज़र कर मांगा । सामंती अत्याचारों का युग था । पुरोहित के पास धन नहीं था । इसीलिए विवशता में उसने वह दुशाला जागीरदार के पास रहन रख दिया जो कि विवाह में बेदी की रस्म में वांछित था । अतः भाँवरों से पूर्व जब दुशाले की आवश्यकता पड़ी तो पुरोहित का उत्तर सुनकर वर बने जम्वाल पुरखे को बेहद अपमान महसूस हुआ । मन ही मन एक गाँठ बन गई । उर्दू कहावत है—"कहरे दरवेश, बजाने दरवेश ।" अर्थात् संत क्रोधित होगा तो अपने प्राणों पर खेल जाएगा ।

अतः बारात की वापसी पर जागीर के हाकिमों से भेंट होते ही वह ललकार कर बोले—"ले, मैं तुझे फल्याना (कर) देता हूँ ।"

ऐसा कह कर जम्वाल पुरखा एक कटार लेकर बोहड़ के पेड़ पर जा चढ़ा और वहाँ बारंबार वही शब्द "ले फल्याना देता हूँ तुझे," दुहारते हुए पेट में कटार घोंप कर उसने आत्मघात कर लिया । शरीर धरती पर आन गिरा । नव-ब्याहता वधू पालकी से निकल कर पति के शव के साथ सती हो गई ।

सामंती युग में सामाजिक अन्याय और जोरावर वर्ग के अत्याचार के प्रतिकार के लिए जम्मू क्षेत्र में आत्मघात प्रथा और सती प्रथा का अत्यधिक प्रचलन था । चूंकि साधारण जन सामंती वर्ग के अत्याचारों का मुकाबला करने में अपने को असमर्थ पाता था—इसलिए

इस लोक-विश्वास के प्रभाव तले आत्मघात अथवा आत्मदाह कर लेता था कि ऐसी मृत्यु के उपरांत वह अत्याचारी से बदला लेगा । स्वेच्छा से ऐसी मृत्यु का वरण करने वाले व्यक्ति को उसके कुल के लोग कुलदेव मान लेते थे । और अपने कुल की जन्म, मुंडन, विवाह आदि प्रथाओं को उससे संबद्ध कर देते थे । मांगलिक अवसरों पर अब भी प्रत्येक डोगरा घराना अपने कुलदेव की अर्चना करके ही ऐसे शुभ कामों का समारंभ करता है । जम्वाल कुल की कुलदेवी और पुरखे का देहरा जम्मू के पुरमंडल नामक तीर्थ स्थल पर स्थित है ।

शंभुनाथ जी के चचेरे भाई पं. पीतांबर पारखी ने सत्यवती से संबद्ध एक अनुष्ठान का वर्णन इस प्रकार किया, "नया अनाज निकलने पर उसका उपभोग शुरु करने से पूर्व बुआ सत्यवती के नाम पर प्रत्येक जम्वाल परिवार 'खारको' के अनुष्ठान को एक विशेष विधि से संपन्न करता है । घर की बड़ी स्त्री एक बड़ा बरतन साफ़ करके रखती है । उसमें एक धुली हुई धोती डालकर उस पर घर के तमाम सदस्यों से एक-एक मूंठ आटा डलवाया जाता है । नीचे धोती होने के कारण बरतन भरा-भरा लगता है । बाद में इस आटे से 'खजूर' नामक पकवान तला जाता है । इन खजूरों को मात्र परिवार के सदस्य खाते हैं । इन पर किसी बाहरी व्यक्ति की नज़र नहीं पड़ने दी जाती । यहाँ तक कि पशु, पक्षी अथवा मक्खी-मच्छर भी इसके निकट न पहुँच सकें, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है । इन तली हुई खजूरों के संबंध में यह वर्जना है कि घर के सदस्यों के अतिरिक्त यह किसी अन्य को न दी जाएं । इस अनुष्ठान की उद्‌भावना उस समय हुई होगी जब किसी समय देश में भयंकर अकाल पड़ा होगा । बाद की पीढ़ियों को अकाल के दौर में संभल कर अनाज का उपयोग करने का संदेश इस प्रतीक द्वारा दिया गया होगा ।

अभिनय के अंकुर :

शंभुनाथ जन्मजात अभिनेता थे और छुटपन से ही रामलीला में भाग लेने लगे थे । वे प्रायः लक्ष्मण की भूमिका अभिनीत किया

करते । जम्मू से श्रीनगर जाने पर बसंत बाग के मंच पर वे नाटकों में भाग लेते रहते । यहाँ तक कि सरकारी सेवा में जाने पर भी खेल के साथ-साथ धार्मिक नाटकों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते रहे ।

अभिनय के अतिरिक्त वह स्वयं नाटक लिखने का प्रयास भी करते रहे थे । अनुज रामनाथ ने इन्हें कई बार स्वरचित नाटकों के संवाद संवारते देखा था । परंतु बाद में वे पुरानी पांडुलिपियां नष्ट हो गई । कालेज में पढ़ते हुए उर्दू भाषा में लिखे अपने नाटक मित्र मंडली में पढ़कर सुनाया करते और उनसे विचार-विमर्श किया करते । नाटक विषयक अभिरुचियों के कारण ही बाद में इन का परिचय जम्मू की प्रख्यात रामलीला क्लब के अवैतनिक अधिकारी और महाराज सरकार में सचिव चेतराम चोपड़ा से हुआ ।

रामलीला के पात्रों और घटनाओं से वे इस कद्र प्रभावित थे कि बचपन से ही नकलें लगाने और नाटकीय संवाद दुहराने में अतीव आनंद अनुभव किया करते । श्रीनगर में एक बार दशहरे में पुतले जलने के उपरांत रावण के पुतले से एक बाँस खींचकर घर ले आए । इसे चीर-फाड़ और छील कर एक धनुष-बाण तैयार किया और लगे निशाना ढूँढने । इनका एक सहपाठी था चूनीलाल । वह भी बसंत बाग का वासी थी । बालक शंभुनाथ ने उससे पूछा— "चूनी, बतला किस लक्ष्य को वेधूं ?"

चूनी ने ललकार कर उत्तर दिया—"मेरे पर निशाना लगा । मैं अपनी जगह खड़ा रहकर अपने हाथ से तेरा बाण पकड़ूंगा ।"

उसने इतना कहा ही था कि बाण सीधे आकर आँख में लगा । मुसीबत खड़ी हो गई । चूनीलाल की आँख जाती रही ।

चूनीलाल का पिता मानवता से भरपूर व्यक्ति था । वह बोला— "होनहार बीत गई है । ये दोनों मित्र हैं । खेल-खेल मे ऐसी होनी बीत गई है जो इन दोनों को सारी उम्र मित्रता की डोरी में बाँध रखेगी ।"

रंगमंच से वाबस्तगी :

पाँचवा दशक जम्मू नगर में जहाँ राजनीतिक गतिविधियों की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व रखता है वहीं सांस्कृतिक गतिविधिया भी इस दौर में अपने यौवन पर जा पहुँची थीं । नाटक, कवि सम्मेलन, धार्मिक शास्त्रार्थ और कथा-वार्ता का वातावरण सामाजिक जीवन की धड़कन बन चुका था । किंतु यह तमाम सांस्कृतिक गतिविधियां प्रायः हिंदी, उर्दू और पंजाबी में हुआ करतीं । उर्दू को राज्य-भाषा बनाए जाने के उपरांत रियासत में डोगरी के प्रोत्साहनार्थ लागू की गई तमाम नीतियां अंधकार में विलीन हो गई थीं । जम्मू में हिंदी के विकासार्थ साहित्यिक स्तर पर अनेक गतिविधियां चल रही थीं । कसबों में रामलीला का प्रचलन था, किंतु गाँवों में 'भगत' और 'हरण' लोक-नाट्य जनता में प्रचलित थे । अतएव कलात्मक गतिविधियों के विकास के लिए उत्साहवर्धक वातावरण विद्यमान था । अनेक नाट्य क्लब और संगीत विद्यालय भी थे । दीवान मंदिर के रंगमंच से अनेक सुप्रसिद्ध कलाकार उभरे । यहीं से युवा निदेशक रत्न शर्मा ने अपने सफल नाटकों के लिए ख्याति अर्जित की थी ।

इसी दशक के पूर्वार्ध में जम्मू के प्रेक्षागृह में प्रदर्शित 'राम-राज्य' फिल्म ने जम्मू की धर्म पारायण जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि फिल्म उतरने के बाद लोगों ने प्रतिभाशाली निदेशक रत्न शर्मा से इस विषय-वस्तु पर एक नाटक प्रस्तुत करने की ज़ोरदार मांग की । ड्रामेटिक क्लब दीवान मंदिर से संबद्ध कलाकारों ने भी इस योजना के प्रति अत्यंत उत्साह प्रदर्शित किया । तब तमाम पहलुओं पर विचार-विमर्श करके रत्न शर्मा ने 1944-45 ई. में 'राम-राज्य' नाटक का शुभारंभ किया । इस नाटक में बाल्मीकि की महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए तत्कालीन सुप्रसिद्ध कलाकार परसराम नागर, दीवान ईशर दास, डॉ. बलराम और शिवराम मोदी में से प्रत्येक की हार्दिक इच्छा थी कि यह भूमिका उन्हें मिले । यह चारो कलाकार न केवल जम्मू में रंगमंच के श्रेष्ठ अभिनेता के रूप में स्थापित हो चुके थे, बल्कि दीवान मंदिर के ड्रामा क्लब में इनका प्रभाव भी काफी

था । इसलिए रत्न शर्मा को इस स्थिति में ऐसा समाधान दरकार था, जिससे किसी की नाराज़गी भी मोल न लेनी पड़े और नाटक भी सफल रहे । उनके समक्ष एक चुनौती यह थी कि प्रस्तावित नाटक उसी स्थिति में जम पाएगा जब यह 'राम-राज्य' फिल्म से ज़्यादा कुछ दे पाए । इसलिए बाल्मीकि की भूमिका के लिए उपयुक्त व्यक्ति की तलाश इनके लिए चिंता का विषय बनी हुई थी । एक दिन इस विषय पर विचार-विमर्श करने हेतु दीवान मंदिर रंगमंच क्लब के सचिव रामचंद महाजन से मिले । वहाँ शंभुनाथ भी बैठे हुए थे । इन पर एक नज़र पड़ते ही रत्न शर्मा ने इन्हें बाल्मीकि की भूमिका में लेने का मन ही मन निर्णय कर लिया ।

रत्न शर्मा का प्रस्ताव सुनकर शंभुनाथ एकाएक खिल उठे और बोले—"मैंने राम लीला में छोटे-मोटे रोल तो ज़रूर किए हैं, मगर इतनी बड़ी भूमिका ठीक से कर पाऊंगा कि नहीं, यह कैसे कहूँ ? वैसे नाटक से ज़्यादा मुझे गायन में रुचि है । इसलिए तुम कोई और सेवा बतलाओ ।"

रत्न शर्मा बोले— "पंडित जी, यह भूमिका सिर्फ आपके लिए है । आप ही इससे न्याय कर पाएंगे, ऐसा मेरा निदेशकीय अनुभव कहता है ।"

पंडित जी में अभी विनम्र संकोच शेष था, इसलिए मंद-मंद मुस्कुराते हुए बोले—"मुझे मंच पर चढ़ाकर तुम मेरा कार्टून बना दोगे ।"

रत्न शर्मा ने कहा—"आप यह क्यों भूलते हैं कि आपकी बेइज्जती, मेरी भी बेइज्जती है, क्योंकि मैं इस नाटक का निदेशक हूँ । इसमें जम्मू के रंगमंच की गण-मान्य हस्तियां काम कर रही हैं और इनमें से यदि आपको बाल्मीकि की भूमिका के लिए चुना है तो ऐसा मैं अपने अनुभव के बल पर कर रहा हूँ ।"

शंभुनाथ हंसे—"अरे तो तू इतने बड़े दिग्गजों में घुसेड़ कर मुझे अभिमन्यु की परीक्षा में डाल रहा है ।"

सहमति का स्वर पहचानते ही रत्न शर्मा ने तपाक से इन्हें इनके लिए लिखी हुई भूमिका की प्रति थमाई और बोले—"तो तय हुआ

कि आपको यह स्वीकार है ।"

शंभुनाथ बोले—"अब मान लिया है तो इसे ब्रह्म वाक्य समझो—अटल ।"

इसके बाद रिहर्सलों का सिलसिला शुरु हुआ जो एक महीना लगातार चलता रहा । इस दौरान रत्न शर्मा द्वारा अपने छोटे भाई के स्थान पर किसी और को एक भूमिका दे देने पर शंभुनाथ रूठकर अलग हो गए । उनका कथन था कि यदि आज तू अपने भाई को निकाल सकता है तो कल को मुझे भी निकाल देगा ।

शंभुनाथ जिन परंपरागत मूल्यों में पले-बढ़े थे और जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था उनके वशीभूत वे नाटक की बेहतरी के लिए किए गए परिवर्तन को गलत ठहरा रहे थे । उनका कहना था एक परिवार में यदि कोई बीमार पड़ जाये तो क्या उसे उठा कर बाहर फेंक देना उपयुक्त है ।

रेत के मैदान में पड़ी हीरे की कणी जैसे प्रकाश की एक किरण को चकाचौंध में परिवर्तित कर देती है, उसी तरह इस छोटी-सी घटना से शंभुनाथ की वैचारिकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सर्वहित-वादी दृष्टिकोण से वे सब का भला चाहते थे । घर में मानसिक रुग्णता से पीड़ित पत्नी का दृष्टांत सदा उनके सामने रहता, जिसे कि घर से बाहर निकलने से पहले वे कमरे में बंद करके आते थे ।

बहरहाल, समझा-बुझाकर इन्हें नाटक के लिए तैयार किया गया । 'राम-राज्य' का मंचन हुआ और लगातार कई दिन होता रहा । जिन लोगों ने इस कथानक पर बनी फिल्म और नाटक दोनों देखे हैं, वे आज भी इस नाटक को फिल्म की तुलना से अधिक प्रभावशाली प्रस्तुति बतलाते हैं । विशेषतया इस में शंभुनाथ की भूमिका की भूरि-भूरि प्रशंसा करने वाले बहुत से लोग आज भी मिल जाएंगे ।

'राम-राज्य' नाटक की सफलता की व्यापक चर्चा के कारण श्रीनगर के ड्रामा क्लब द्वारा वहाँ भी इसका एक प्रदर्शन करने का अनुरोध किया गया । जम्मू से मात्र चार कलाकारों को संग लेकर

रत्न शर्मा श्रीनगर पहुँचे । इन कलाकारों में शंभुनाथ भी थे । शेष कलाकार श्रीनगर से लेकर कुछेक रिहर्सलों के बाद यह नाटक वहाँ प्रस्तुत किया गया । लाहोर की 'पंचौली फिल्म कम्पनी' के स्वामी तथा निर्माता दलसुख पंचौली उन दिनों श्रीनगर में थे । वहाँ 'राम-राज्य' नाटक मे शंभुनाथ की भूमिका देखकर वह इतने प्रभावित हुए कि इन्हें अपने साथ लाहोर की फिल्मी दुनिया में चलने का न्यौता दे दिया ।

परंतु कट्टरपंथी डोगरा समाज में उन दिनों फिल्मी दुनिया को चरित्रहीनता का प्रतीक माना जाता था । अज्ञानतावश यहाँ तक कहा जाता कि फिल्मों में कंजर लोग काम करते हैं । संभवतया अपने पुरातनपंथी और रुढ़िवादी वातावरण के कारण शंभुनाथ को यह न्यौता स्वीकार्य न था । बहरहाल, सनातन धर्म क्लब श्रीनगर के प्रबंध में प्रताप भवन में 'राम-राज्य' के कई प्रदर्शन हुए और शंभुनाथ धर्म-भीरू कला प्रेमियों के हृदय के सम्राट बन गए ।

रंगमंच पर जमी धाक :

1957 ई. में रत्न शर्मा ने शंभुनाथ को लेकर नया नाटक खेलने का विचार किया । उनके सामने पुनः बाल्मीकि का चरित्र था । परंतु इस बार इस चरित्र को अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया जाना था । 'बाल्मीकि' नामक इस नाटक में बाल्मीकि की ऋषित्व तक की विकास-यात्रा का वृत्तांत था । 'राम-राज्य' में अभिनीत अपनी चिर स्मरणीय भूमिका से शंभुनाथ कई गुणा आगे बढ़ गए । इस बात के लिए उन्हें ढेरों बधाइयां प्राप्त हुई । इस नाटक में इन्हें बाल्मीकि की; एक किसान, एक पुत्री के पिता, फिर डाकू और अंततः एक ऋषि की भूमिका अभिनीत करनी थी । इसलिए इन्हें बाल्मीकि के चरित्र से संबद्ध चार भिन्न-भिन्न भूमिकाओं को सफलता से करते देख कलापारखी दंग रह गए । डाकू की भूमिका में हाथ में कुल्हाड़ा लहराते यह उस चरित्र को प्राणवान बना देते । किसान, बेटी के बाप तथा ऋषि के रूप में भी अपनी भूमिका को जीवंत बना देते ।

डोगरी नाटक 'नमां ग्रां' के मंचन की तैयारी में रत्न शर्मा पात्रों का चयन कर रहे थे । तब शंभुनाथ की इच्छा जानने के लिए उन्होंने इनकी ओर देखा । वे तुरंत बोले—"मेरी ओर क्या देख रहा है । मैं तो घड़े में बंद मछली हूँ । जब जी चाहा निकालकर तरकारी बना ली ।"

यह वह दौर था जब डोगरी भाषा और साहित्य का ज़ोरदार आंदोलन डोगरी संस्था की ओर से चलाया जा रहा था । डोगरी का प्रत्येक लेखक इसके प्रचारक की भूमिका भी निभा रहा था । घरेलू परेशानियों से घिरे होकर भी शंभुनाथ न केवल कविता लिख रहे थे, बल्कि डोगरी भाषा और संस्कृति के उत्थान में भी अन्य साथियों से सहयोग कर रहे थे । 'नमां ग्रां' में इन्होंने सेना के सेवा-निवृत्त जमादार की भूमिका निभाई थी । इस नाटक के अनेक प्रदर्शन गाँवों में किए गए । शंभुनाथ ने इस नाटक में भी एक मंजे हुए मंचीय कलाकार के रूप में ख्याति अर्जित की ।

1956 ई. में दीनूभाई पंत द्वारा लिखित 'सरपंच' शीर्षक नाटक का मंचन शुरु हुआ । रतन शर्मा द्वारा निदेशित इस नाटक में शंभुनाथ ने ज़ालिम जागीरदार बांगी के जाति-भाई चौधरी की भूमिका निभाई थी । उनके समकालीन नाट्य कलाकारों का कहना है कि अपनी भूमिका को वे जिस उत्कर्ष पर ले गए थे, उसे देखकर लगता था किसी और कलाकार का स्थानापन्न तो मिल सकता है परंतु शंभुनाथ का बदल संभव नहीं । प्रसंगानुकूल हाव-भाव और भाषा के उतार-चढ़ाव एवं अभिनय कला के अन्य उपादानों द्वारा अपनी भूमिका को वे इस तरह सप्राण बना देते मानो नाटक नहीं यथार्थ जीवन का दृश्य सामने घटित हो रहा हो । इसी कारण समकालीन मंचीय कलाकारों में उन्हें एक उच्च स्तरीय कलाकार की मान्यता प्राप्त थी । नाटक की मार्मिक कथा-वस्तु तथा जीवंत अभिनय कला मिलकर वांछित प्रभाव को द्विगुणित कर देते थे ।

'मौत मांगने से नहीं मिलती । और भीख मांगना हमारा धर्म नहीं ।' यह संवाद दर्शकों की आँखों में आँसू भर देता ।

'सरपंच' नाटक देहात सुधार विभाग की ओर से डोगरी भाषी

क्षेत्र के प्रायः हर बड़े गाँव में खेला गया । इस नाटक के 300 से अधिक प्रदर्शन हुए । एक बार मंचन के साथ-साथ रेडियो कश्मीर जम्मू से इसका सजीव प्रसारण भी किया गया ।

'नमां ग्रां' और 'सरपंच' इन दोनों डोगरी नाटकों ने निज भाषा के प्रति लोगों के हीनताबोध को तिरोहित करने में अपूर्व योगदान दिया । अपनी भाषा में व्यक्त हंसी-खुशी, व्यंग्य-विनोद और सृजन की सामर्थ्य देखकर लोग चमत्कृत हो उठे ।

डोगरी भाषा के गौरव-उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य में शंभुनाथ ने अन्य डोगरी प्रेमियों के संग सहयोग किया था । उस समय जबकि डोगरी भाषा में बातचीत तक करना गंवारूपन का प्रतीक बना हुआ था; ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करके उन्होंने डुग्गर के सांस्कृतिक उत्थान में भागीदारी निबाही थी । अंतिम बार शंभुनाथ 'सरपंच' के 1970 ई. में हुए प्रदर्शन में देखे गए । बाद में संभवतया जीवन के प्रति दौड़ कठिन मोड़ों में जा पहुँची थी, क्योंकि इसके बाद उन्होंने न तो मंचीय गतिविधियों में भाग लिया और न ही साहित्यिक कार्यक्रमों में ही सम्मिलित हुए । लगता है उनका साहित्यिक गुटबंदियों और साहित्यकारों की मिथ्या अहं-भावनाओं के पररस्पर टकराव से मन उक्ता गया था । साथ ही ढलती उम्र के तीव्र अहसास, ज़िंदगी की बढ़ती ज़रूरतों और घरेलू जिम्मेवारियों की चिंता के कारण तत्काल कलात्मक गतिविधियों से चुपचाप अपने को अलग कर लिया ।

समकालीन लोग उन्हें समझदार अभिनेता मानते थे, क्योंकि वह भूमिका की सूक्ष्मताओं को स्वतः समझ लेते थे । निदेशक को इन से मत्था-पच्ची नहीं करनी पड़ती थी । स्थिति के अनुरूप अभिनय में दर्द-प्रेम आदि मनोभावों का यथोचित पुट देकर दर्शकों से आहें भरवा देते । मंच के साथ-साथ रेडियो नाटकों में भी निरंतर भाग लेते रहते । आवाज़ इनकी मूल्यवान संपत्ति थी ।

अभिनय कला पर इनकी पकड़ के विषय में इतना काफी है कि 'नमां ग्रां' और 'सरपंच' नाटकों की सैकड़ों प्रस्तुतियों के बावजूद, इन दोनों नाटकों में जहाँ कई कलाकार बदले जाते रहे वहीं न

इन्हें बदलना संभव हुआ और न ही वे भाषा के प्रति दायित्व से पीछे हटे ।

शंभुनाथ शराफत के पुजारी थे । भूलकर भी पर-निंदा नहीं करते थे । हरेक को उचित सत्कार देते । किसी से दारुण मानसिक क्लेश पाकर भी गाली न निकालते । 'जो प्रभु इच्छा'—इतना भर कह कर सुनी-सुनाई को रफा-दफा कर देते । परिचय की परिधि में प्रसिद्ध था कि जिव्हा और मन पर इन्हें समान नियंत्रण प्रप्त है । किसी भी व्यक्ति के अच्छे या बुरे काम पर कभी टीका-टिप्पणी न करते । सदैव खामोशी को जिरह-बख्तर की तरह धारण किए रहते और किसी के बहकावे में न आते । इसलिए कवि वर्ग में उनके विषय में प्रसिद्ध था कि वे ऐसी काली कमली हैं जिस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता । महाराज की चाकरी में रहते हुए भी कभी शराब-सिगरेट या माँस का सेवन नहीं किया । इसीलिए महाराजा हरिसिंह हंसी-हंसी में इन्हें दालखोर ब्राह्मण कहा करते ।

शंभुनाथ रोज़ाना पूजा-पाठ करते और ध्यान लगाते । पूजा के समय महाराज के बुलाने पर भी वे पूजा के आसन से हटते नहीं थे । महाराजा हरिसिंह उनके इस नियम का यथेष्ट सम्मान करते ।

हृदय में अनेक निराशाएं पाले हुए भी वे सदा मुस्कुराते रहते और मित्र मंडली में नित्य नए लतीफे और व्यंग्योक्तियां सुनाकर आनंद में सराबोर कर देते । छोटों में छोटे और बड़ों में बड़े बनने में कमाल की दक्षता प्राप्त थी ।

किस्सा आत्मिक-शक्ति का :

उनकी दृढ़ आत्मिक शक्ति के विषय में अनेक किस्से प्रचलित हैं । उनके अनन्य मित्र डोगरी कवि तारा स्मैलपुरी से एक अद्‌भुत किंतु अविश्वसनीय घटना सुनने को मिली, जिसे पाठकों की दिलचस्पी के लिए यहाँ उद्‌धृत किया जा रहा है ।

एक बार यह दोनों मित्र रेडियो स्टेशन से बाहर आ रहे थे । आत्मिक शक्ति की बात चल रही थी ।

तारा स्मैलपुरी जिन्हें इस समय सर दर्द हो रहा था, बात बदलने के लिए बोले—"पंडित जी आपमें कितनी 'विल-पावर' है ?"

शंभुनाथ गर्व से बोले—"सामने खंभे पर जो बल्ब दिख रहा है, उसे आत्मिक बल से फोड़ सकता हूँ ।"

तारा स्मैलपुरी ने चुनौती दी—"तो फोड़ कर दिखाइए ।"

शंभुनाथ कवि मित्र को साथ लिए खंभे के समीप पहुँचे । स्मैलपुरी भीतर ही भीतर प्रमुदित मन से सोच रहे थे कि बल्ब फटेगा नहीं और मैं पूछूंगा, आपके आत्मबल का क्या हुआ ।

शंभुनाथ एकटक बल्ब को निहारने लगे । तभी बल्ब हल्के धमाके की आवाज़ से फट गया । स्मैलपुरी भौचक होकर इधर-उधर देखने लगे कि कहीं किसी ने कंकड मारा हो । पर आस-पास कहीं कोई न था । पंडित जी के होंठों पर मद्धिम मुस्कान खिल रही थी । कवि मित्र स्मैलपुरी ने पूछा—"यदि इस शक्ति का प्रदर्शन किया जाए तो दुनिया वाह-वाह करने लगेगी, आपकी प्रसिद्धि भी होगी ।"

पंडित जी असहमति के स्वर में बोले—"प्रत्येक चीज़ पर वाह-वाह नहीं चाहता आदमी । आत्मिक शक्ति क्या सिर्फ मुझी में है । प्रत्येक जीवित व्यक्ति इस शक्ति का पुंज है । केवल आत्मबल को केंद्रित करने की बात है । फिर इसका प्रदर्शन एक तरह से घटियापन लगता है ।"

तारा स्मैलपुरी के हृदय में बल्ब फटने की घटना के प्रति अभी शंका शेष थी, इसलिए वे एक और परीक्षा करना चाहते थे । बोले—"आपने 'विल-पावर' से बल्ब तो फोड़ दिया, अब मेरा सर दर्द दूर करें तो जानूं ।"

शंभुनाथ ने हाथ के अंगूठे और अनामिका अंगुली से स्मैलपुरी के माथे को मध्य से दबाया । कुछ ही पलों में सरदर्द जाता रहा ।

दुःख अपने लिए : हंसी औरों के लिए :

यह सुनने में आता है कि साहित्यकारों के जमघट में वे प्रायः

चुप साधे रहते, जबकि असाहित्यिक गोष्ठियों में इतने मुखर हो जाते कि बात-बात पर हंसा देते । एक बार अपने कवि मित्र को इसका रहस्य बतलाते हुए उन्होंने कहा था—साहित्यकारों में गैर-संजीदा होने का अर्थ है अपनी कविता की गहराई को झूठा सिद्ध करना क्योंकि गंभीरता और ज़िम्मेवारी भरा संदेश देने वाला कवि स्वयं उच्छृंखल दिखेगा तो उसकी कविता का प्रभाव आधा रह जाएगा । इसी तरह साहित्यकार मित्रों के आगे अपना दुःखड़ा रोने का क्या लाभ । किसी को हमारे रोने-धाने में क्योंकर दिलचस्पी होगी । आज हर आदमी किसी न किसी तकलीफ में है । यदि सभी लोग दुःख-पुराण खोल कर बैठ जाएं तो ज़िंदगी लानत बन जाएगी । इसलिए बेहतर तो यह है कि कष्टों को भुलाने के लिए चन्द लम्हे हंसा जाए, हंसाया जाए, क्योंकि अलग होते ही हमें अपना-अपना दुःख पुराण खोलकर बैठ जाना है । दुःख तो वहाँ हैं ही जहाँ हैं, इसलिए क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम जब मिलें हंसते हुए मिलें, मुंह बिसूरे हुए नहीं.....।"

भाग्य की दुश्चिंता :

पर्याप्त आर्थिक साधन न होते हुए शंभुनाथ राजसी शौक पालते थे । शतरंज के वे दीवाने ही थे । जहाँ बिसात बिछी देखी, वहीं अकल के घोड़े दौड़ाने लगे । एक बार रोगी पत्नी के लिए दवा लेने निकले । रास्ते में कहीं शतरंज की बाज़ी लगी देखी । इसमें ऐसे उलझे कि रात को दस बजे दवा की खाली बोतल उठाए घर में घुसे । इस पर एक परिचित ने प्रेमवश डाँट पिलाई तो अपनी भूल के लिए क्षमा मांगने लगे । इसके बाद कभी ऐसी भूल न होने पाई ।

घोड़ों की रेस का भी उन्हें बेहद शौक था । बंबई रहते हुए रेस में थोड़ा-थोड़ा करके वे दस हज़ार रुपये दाँव पर लगा बैठे थे । इससे एक बात अवश्य ही स्पष्ट हो जाती है कि यह दाँव खेलकर उन्होंने भाग्य लिपि को बदलने का प्रयत्न एक बार अवश्य किया था । इसमें चाहे असफलता ही क्यों न हाथ लगी हो ।

गृहस्थी का सुख न मिल पाने की वजह से वे दुःखी ज़रूर थे, परंतु अपने मनोभावों को दूसरों पर प्रकट न होने देते । कई हितैषी दूसरे विवाह की राह सुझाते, किंतु इस तथ्य के बावजूद कि उग्र विवाह के योग्य थी, तो भी उन्होंने इस सुझाव पर विचार तक न किया । वे कहा करते—"मेरे भाग्य में ही जब यह सब लिखा है तो दूसरी पत्नी भी सुख कैसे दे पाएगी ।" इनके तीन संतानें हुई । तीनों लड़कियों थीं । पुत्र की आशा तो मन में थी, किंतु बेटियों को ही बेटे मानकर मन को मना लेते ।

मानसिक क्लेशों को पचाने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी । परंतु उनके जीवन की असफलताएं भी मित्र वर्ग से छिपी न थीं । इसीलिए कई बार मित्र संगति में कह दिया करते—"प्रभु जी, हमने भी ज़िंदगी देखी है । इश्क किया है ।"

ज़िंदगी देखने से उनका तात्पर्य ज़िंदगी की रंगीनियों से था । परंतु ज़िंदगी को किस निगाह से देखा गया था ? इश्क का पात्र कौन खुशनसीब था ? इश्क किया भी था या मात्र दुःखों के जमघट और तज्जनित हीन-भावना से उभरने के लिए की गई कोरी कल्पना मात्र थी । अथवा जीवन के पूर्वार्ध की मृदु स्मृतियां थी । ऐसे अनेक प्रश्न अनुत्तरित पड़े रह जाते हैं । ऐसे कुछेक प्रश्नों के संकेत एवं साक्ष्य उनकी कविताओं में अवश्य उपलब्ध हो जाते हैं । चंद कविताओं में उनका प्रेम-पिपासू हृदय अवश्य ही छलकता दिखाई देता है । परंतु, यह ज़्यादा साफ है कि उनकी ज़िंदगी ऊबड़-खाबड़ और कठिन रास्तों से गुज़री थी । समय के प्रबल थपेड़ों को भाग्य की देन मानकर हंसते हुए सीने पर झेला था ।

गज़ल

सिले ओठों का दर्द—गज़ल :

"धधुयाता रहा एक अलाव-सा सीने में ।
उम्र बीत गई ओठों को सिए हुए ।"

—शंभुनाथ शर्मा

समाज से मिली प्रत्येक ठोकर लेखकीय अनुभव को समृद्ध करती हुई उसकी रचानात्मक ऊर्जस्विता में परिवर्तित होती जाती है । सामाजिक परिवेश का गुणात्मक प्रत्यावर्तन किसी भी जीवंत साहित्यिक रचना की मूलभूत शर्त होता है । परंतु साहित्य मात्र प्रतिबिंब नहीं होता, यह तो लेखक के कटु एवं मृदु अनुभवों का उदात्त प्रस्फुटन है । साहित्यिक कथन में गूढ़ता, प्रतिक्रिया में प्रेरणा और अभिव्यक्ति में संदेश अन्तर्निहित रहता है । यही गुण साहित्य को साधारण बातचीत से ऊपर का दर्जा देता है । साहित्य को कल्पना के आकाश से उतार कर यथार्थ के धरातल पर स्थापित करने का आग्रह आज की रचनाधर्मिता का केंद्र बना हुआ है । वस्तुस्थिति के आकलन में स्वयं सहभागी होकर लेखक निजी भावनाओं को व्यापकता प्रदान करता है । अपनी बात को सब की बात बना कर एक महती दायित्व का निर्वाह करता है ।

गज़ल : डोगरी कवियों का प्रिय निकष :

डोगरी गज़ल में इधर यह आग्रह एक प्रखर एवं चुटीले व्यंग्य के रूप में उभरा है । गज़ल ने समकालीन सामाजिक परिदृश्य पर जिस तीखे अंदाज़ से दो सतरों के शेऽर में बात व्यंजित करने की सलाहियत प्रदर्शित की है—उससे इस विधा के तीव्र प्रसार को सहज ही समझा जा सकता है ।

ख्याल की नज़ाकत और शब्दों की मीनाकारी की वजह से गज़ल

को एक नाजुक विधा का दर्जा हासिल है । मिसरा और मिसरा-सानी की सीमित परिधि में त्रि-आयामी शब्द-चित्र गढ़ने की ललित-कला गज़ल है । गज़ल का शाब्दिक अर्थ है किसी हसीन से बातें करना । और इस अर्थ के अनुसार यह नाज़-नखरे उठाने वाली ऐसी कोमल विधा है जो पारदर्शी शीशे की तरह मानसिक उद्वेगों, वैचारिक ऊहापोहों को स्पष्टता से उजागर कर देती है । निजता के धरातल से ऊपर उठाकर वैयक्तिक अनुभव को सामुदायिक संगति प्रदान करने के लिए कवि इस आत्मनिष्ठ शैली को अपनाता है । स्वानुभूत को सबके अनुभव के व्यापक घेरे में रखने के लिए दो सतरों के कलेवर का शेऽर कई बार इतना उपयुक्त होता है कि जो बात एक पृष्ठ में कह पाना कठिन हो, उसे एक शेऽर की बंदिश में आसानी से कह दिया जाता है । वस्तुतः गज़ल का एक अच्छा शेऽर विशेष अनुभव का निचोड़ होता है ।

डोगरी भाषा में गज़ल उर्दू के माध्यम से आई है । चूंकि रियासत जम्मू-कश्मीर में सरकारी काम-काज की भाषा उर्दू है, इसलिए प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति किसी न किसी सीमा तक उर्दू से प्रभावित है । संभवतया यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि उर्दू के बाद किसी दूसरी भारतीय भाषा में गज़ल पक्के पाँव से जम पाई है तो वह डोगरी भाषा है । इसका प्रमाण यह है कि गज़ल विधा ने डोगरी में कविता की मुख्य धारा को प्रायः रुद्ध करके रख दिया है । प्रत्येक छोटा-बड़ा कवि गज़ल लिखने को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर इस में इस कद्र निमग्न हो चुका है कि कविता की अन्य शैलियों की धाराएं प्रायः सूख गयी लगती हैं ।

गज़ल लेखन के लिए शब्द-सामर्थ्य के अतिरिक्त भाषा पर नियंत्रण होना अत्यावश्यक है ताकि शायर गज़ल के लिए आवश्यक वक्रोक्ति चमत्कार पैदा करने के लिए शब्दों को नए संस्कार दे पाए और उनमें नई रंगतें ढूँढ सके । शब्दों के इस कलात्मक समायोजन में अंतिम आधे मिसरे की द्वियर्थकता गज़ल को विशेष अंदाज़ प्रदान करती है । शब्द चयन, वाक्य की बनावट और कवि आशय का अटूट संबंध है । इसलिए गज़ल शायर को शब्दों से खिलवाड़ करने और

उनके बहुरंगी अर्थों को व्यंजित करने की छूट देती है । ज़बान की चासनी और लताफ़त जितनी गज़ल में उभरती है, उतनी और किसी विधा में नहीं देखी गई । इसलिए गज़ल को मात्र शब्दों का जाल मानना या वाह-वाही लूटने का सस्ता साधन समझना वस्तुतः एक भूल है ।

डोगरी गज़ल की उम्र का पसारा विगत तीन दशकों में फैला हुआ है । इस अर्से में गज़ल ने न केवल अपना काव्यात्मक स्वभाव गढ़ा है—बल्कि डोगरी भाषा में काव्य-सृजन को एक ऊँचे स्तर तक भी पहुँचाया है । इसके अतिरिक्त डोगरी के रचनात्मक आंदोलन का प्रतिनिधित्व भी गज़ल विधा स्वतः करने लगी है । अपनी काव्यात्मक भूमिका से आगे बढ़कर यह संपूर्ण साहित्यिक गतिविधि की प्रतीक बनी हुई है ।

गज़ल के उद्‌गम का श्रेय दीनूभाई पंत पाँचवे दशक की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों को देते हैं । उनका कहना है कि इस दशक में कई कारणों से राजनीतिक वातावरण अस्पष्ट था । जम्मू में भारत के साथ विलय का आंदोलन तीव्र होता जा रहा था । राजनीतिक कर्णधार इधर-उधर पक्ष बदल रहे थे । कवियों के मन कुछ कहने को तड़प रहे थे । वातावरण में घुटन थी, खुलकर कहने की हिम्मत तड़प रही थी । तूफान से पूर्व जैसे चुपचाप और डरावनी परिस्थितियां दिखती हैं, कुछ वैसी ही दशा थी । कवि वर्ग महसूस कर रहा था कि जो होना चाहिए, वह हो नहीं पा रहा । सीधे बात कहने में बिगड़ती बात के और बिगड़ने का भय था । असमंजस की इस स्थिति ने डोगरी गज़ल को जन्म दिया ।

परंतु दीनूभाई पंत के इस कथन की पुष्टि उस समय रचित साहित्य से नहीं हो पाती । अलबत्ता, व्यक्तिगत विचारधारा अथवा निजी अनुभूति उस समय की गज़ल में अवश्य ही प्रतिफलित हुई है ।

डोगरी गज़ल का प्रवर्तन वेदपाल 'दीप' द्वारा हुआ और तुरंत ही इस विधा में कृष्ण स्मैलपुरी, शंभुनाथ शर्मा आदि कवि कलम-आज़माई करने लगे । इनसे पूर्व संतराम शास्त्री स्वरचित गज़लें

हारमोनियम पर गाने-बजाने का अभ्यास किया करते थे, किंतु उनकी पांडुलिपि अभी तक मिल नहीं पाई ।

शुरु में गज़ल शैली की प्रासंगिकता को लेकर डोगरी भाषा में अनेक संदेह प्रकट किए जा रहे थे । चूंकि उर्दू में 1935-36 ई. की तरक्की-पसंद तहरीक़ का सफल वहन यह विधा कर सकी थी, इसलिए डोगरी में इसकी सफलता असंदिग्ध थी । वस्तुतः डोगरी के आधुनिक साहित्यिक आंदोलन की शुरुआत प्रगतिशील विचारधारा के प्रभाव तले हुई थी । इसलिए इस संपूर्ण आंदोलन में अन्तर्निहित प्रगतिवादिता के कारण और उर्दू का प्रभाव क्षेत्र होने के कारण गज़ल डोगरी साहित्यकारों का प्रिय निकष बन गई ।

परिवर्तन और भाग्यवाद :

यद्यपि संख्या की दृष्टि से शंभुनाथ ने बहुत ज़्यादा गज़लें तो नहीं लिखीं तथापि साहित्यिक दृष्टि से और गज़ल छन्द-शास्त्र के स्वीकृत नियमों के परिपालन की दृष्टि से यह गज़लें अलग हैसियत रखती हैं । कुलबिल 21 चुस्त-दरुस्त गज़लें लिखकर उन्होंने डोगरी गज़ल की विकास-यात्रा में अपने लिए अलग मुकाम कायम किया । इन गज़लों में कवि के निजी जीवन की झलक मिलती ही है, साथ ही बदलते सामाजिक परिदृश्य का चित्राकंन भी हुआ है । चूंकि शंभुनाथ परंपरागत जीवन मूल्यों के साथ-साथ सामंती मूल्यों के पृष्ठ-पोषक थे, इसलिए व्यक्तिगत रूप से वे रजवाड़ाशाही के पक्षधर रहे थे । परंतु इस दौर से संबद्ध मूल्यों को उन्होंने अपनी आँखों के सामने चकनाचूर होते देखा था, इसलिए नए परिवर्तनों के प्रति शंकालू होते हुए भी वे डोगरी संस्था के प्रगतिशील संपर्कों के कारण इस बदलाव को स्वागत कहते दिख जाते हैं । समय के झंझावात ने उस घोंसले को झकझोर कर तिनकों के खंडहर में बदल डाला, जोकि कभी कवि की आस्थाओं का आश्रय रहा था ।

"कुछ परिवर्तन देखे इसने,
आखिर बदली समय की धारा ।
नीड़ के चिन्ह शेष कहाँ अब,
बिखरे तिनकों का एक सहारा ।"

परिवर्तन की अवश्यंभाविता के प्रति जागरूकता के कारण उन्होंने समय की गत्यात्मकता को अपनी कविता का विषय बनाया । किन्हीं स्थितियों में वे पुरातन ढाँचे के समर्थक दिखते हैं । इस दोहरी मानसिकता के कारण उनकी कविता में दो स्वरों की शिनाख्त होती है—

1. एक वह जिसमें परिवर्तन को सराहा गया है ।
2. दूसरा वह जिसमें परिवर्तन के प्रति खीझ प्रकट की गई है ।

गज़ल में प्रायः दूसरा पक्ष अधिक मुखरित हुआ है । इसी से भाग्यवाद के प्रति उनके बढ़ते हुए विश्वास का अन्तः साक्ष्य भी प्राप्त होता है ।

यह आमतौर पर देखा जाता है कि डोगरी गज़ल में इश्क-मुहब्बत के विषय को लेकर शेऽर कहने से प्रायः गुरेज़ किया जाता है, जबकि उर्दू गज़लियात में इन्हें रीढ़ की हड्डी की हैसियत प्राप्त रही है । उर्दू गज़ल की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण यह विषय भी रहा है । डोगरी के गज़ल-गो शायरों ने इस विषय को छूने का साहस नहीं किया । इसका मुख्य कारण है डोगरा शायर एवं डोगरी-भाषी लोगों का कट्टरपंथी सनातनधर्मी दृष्टिकोण । इश्क-मुहब्बत को ऐसा विषय माना जाता है जो परंपरागत पारिवारिक मर्यादा और शाइस्तगी का उल्लंघन करता है । इसलिए डोगरी में इश्किया शायरी के लिए काफी कम स्थान है । मात्र वेदपाल 'दीप' और शंभुनाथ शर्मा ने ही कुछेक गज़लें इस विषय पर कही हैं । इश्क में नाकामी के भुक्तभोगी वेदपाल 'दीप' ने चंदेक खूबसूरत शेऽरों से इस विषय को खूबसूरती से निबाहा है । इसी तरह जीवन में चारों खाने असफलता का साक्षात्कार करने वाले शंभुनाथ ने भी इस विषय पर कुछेक पुख्ता शेऽर कहे हैं ।

कथन-वक्रता और प्रभाव की दृष्टि से शंभुनाथ की गज़लों में उर्दू गज़ल का-सा आस्वाद मौजूद है जो उन्हें शेष डोगरी शायरों से अलग स्थान प्रदान करता है । इश्क-मुहब्बत से स्पष्टयता जुड़े शेऽरों के साथ ही कहीं-कहीं वे डोगरा मर्यादायों के वशीभूत दुनियावी प्रेम पर हक़ीकी इश्क का मुलम्मा चढ़ा देते हैं । यथा—

"चार दिन दित्ते भला दित्ते बी गिनिऐ चारे,
अन्त तेरा ते कुतै आद नि पाना मिलेआ ।"

उपर्युक्त शेऽर में जहाँ प्रेयसी से गिला है कि चार दिन के मिलन के उपरांत तेरा अता-पता न मिला वहीं ईश्वर से गिला है कि चार दिन की छोटी-सी ज़िन्दगानी देकर तूने अपना आदि-अंत ढूँढने का अवसर नहीं दिया । और भी कई शेऽरों में वे उस महबूब की ओर संकेत करते हैं जिसकी एक झलक पाकर उनका कवि हृदय खिल उठता है । यह बात उनकी मानसिक व्यथा बनकर टीस रही है कि महबूब ने दीदार का अवसर ही न दिया । बीती घड़ियों का स्मरण आँखें भर देता है—

"चुप बैठे दे के याद आया, अक्खीं बिच अत्थरूं आई गे,
दो बोल गलाए सज्जनें दे, भुल्ले-बिसरे दे खाई गे ।"

एकाकी क्षणों में कुछ याद आ जाने से सहसा आँखों में आँसू उमड़ आए और प्रेयसी के कहे दो भूले-बिसरे बोल हृदय को कचोटने लगे । एक अन्य शेऽर में उसका यह कथन बड़ा मायनेखेज़ लगता है कि घर रस-बस रहा है, किसी चीज़ का अभाव नहीं ऐसे में हमें ऐसे अतिथि की आवश्यकता नहीं जो मात्र झलक दिखाने आए और जाते-जाते रुला जाए । पाँच शेऽरों की गज़ल में कवि ने प्रेम भावना का पक्ष निहायत खूबसूरती से प्रस्तुत किया है । परंतु वह संयोग भी क्षण भर का था जो प्रेयसी से मिलन की याद मात्र बनकर रह गया । वे (प्रेयसी) चाँद बनकर हृदयाकाश पर छा गए । उन्हें देखकर तारे शरमा गए । उनके आने से जान में जान आई । उनका आना जैसे स्वप्न मात्र था । उनका आना तो भ्रम का आरंभ मात्र था । उनकी चोटी साँप लगने लगी । हम फिर आएंगे, कह कर वे टाल गए । उनकी हंसी से हृदय में फूल खिल उठे । वे क्रोधित हुए तो वे फूल मुरझा गए । हमारा जीवित रहना उनसे वाबस्ता हो गया । जाते-जाते वे दिल लेते गए, इस भाँति एक अमिट पहचान बना गए । उनका अलौकिक सौंदर्य जीते-जी हमें मार गया । हम कुछ मांगने की ज़िद न कर बैठें—इससे पहले वे बहाना बनाकर खिसक लिए । एक अन्य स्थान पर उनकी प्रेम व्यथा में निजता

का अंश, इस भावोद्वेलन के प्रामाणिक होने का साक्षी है । उनका कथन है—देस और दुनिया अपनी थी । प्रेमिका भी अपनी थी, परंतु भाग्य पराए थे—यही एक कमी थी जिसके कारण अपने होकर भी वे मुझे अपना न सके । 'जिन्द' शब्द का यदि 'प्रेयसी' अर्थ लिया जाए जो दूसरे की हो चुकी है तो कवि की व्यथा प्रकृत दिखाई देती है । परंतु यदि इसका साधारण अर्थ शरीर धरा जाए तो कवि का गिला भाग्य के प्रति है । वह कलम दूसरे के हाथ में है जिसने किसमत में परायापन लिख दिया है । परंतु यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि 'जिन्द' शब्द लाक्षणिक अर्थ में प्रेमिका के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । एक अन्य शेऽर में यह स्पष्टतया प्रेयसी को संबोधित है । शेऽर का भावार्थ है, तू नहीं मिली, पर मैं जिधर भी घूमा मुझे तेरे नाम का ताना मिला । तुम्हारा बहुत नाम था और मेरे हृदय में मिलन की उत्कट अभिलाषा थी । इसके सहारे शायद मैं तुझे ढूँढ लेता पर मेरी खोज तेरी गली में आने-जाने और उससे गुज़रने तक सीमित रही ।

निजतावादी शैली :

प्रेम की कतिपय दशाओं में दुविधा की स्थिति और डाँवाडोल मनः-स्थिति को कवि ने सूक्ष्मता से अभिव्यंजित किया है । शेऽर किसी कुशल चितेरे द्वारा उकेरे गए चित्रों की भाँति प्रभावशाली बन पड़े हैं । शब्दान्वयन द्वारा चित्रांकन का प्रभाव उत्पन्न करना काव्य-सौष्ठव का अनुपम उदाहरण माना जाता है, जिसमें सूक्ष्म भाव-भंगी के स्पष्टीकरण की किंचित् आवश्यकता नहीं रहती । "उन्दी मैहफल अस बिन साद्दे जाई ते बड़े, जद नजर मिली, मन अगड़ा, पैर पिछड़े खिच्चन, ना आई सके ना जाई सके ।"

"उनकी महफिल में हम बिन बुलाए जा पहुँचे । जब नज़र मिली, मन आगे की ओर बढ़ना चाहता था, किंतु पाँव पीछे की ओर खींच रहे थे । न हम लौट सके न महफिल में जा पाए ।" असमंजस और मानसिक कशमकश का ऐसा सुंदर शब्द-चित्र, सूक्ष्म चित्रण का सफल उदाहरण है ।

प्रेम की वियोगावस्था में विरह के उत्ताप से झरने वाले आँसू बहुमूल्य होते हैं । साधारण आँसू गोद में गिरकर सूख जाता है, किंतु विरह का आँसू अनमोल मोती का दर्जा पा जाता है । आँसू के इसी महत्त्व को एक अन्य गज़ल के शेऽर में कवि ने अप्रस्तुत वर्णन द्वारा द्विगुणित कर दिया है । "प्रेम रूपी फूलों का गहरा रंग आँखों में खुमारी बनकर चढ़ जाता है । हमारी तो गोद इन फूलों के बार-बार झरने के कारण रंग गई है । पुरानी प्रीत का स्मरण मानो दुःखदायी वैरी की स्मृति के समान होता है । आँखों में पानी भरा रहता है हृदय में आग सुलगती रहती है । प्रेम का हुलार आते ही एक ओर जहाँ बरसात लग जाती है वहीं दूसरी ओर विरह की अग्नि धधक उठती है ।

गज़ल को निजतावादी शैली के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण इसमें विषय की दृष्टि से विस्तार नहीं आ पाया । कवि बारंबार कुछेक गिने-चुने विषयों पर ही अपनी कलम चलाता है । आज का गज़ल-गो शायर दृष्टिकोण की जिस व्यापकता से इस विधा को प्रयुक्त कर रहा है, कवि शंभुनाथ अपेक्षाकृत रूप से उतने मुखर नहीं हुए । उनके दृष्टिकोण की परिधि न केवल संकुचित है, बल्कि आवश्यकता से अधिक आत्मपरकता से भी ग्रस्त है ।

ईश्वर, वेदना और भाग्य का त्रिकोण :

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त शंभुनाथ की गज़ल के कुछेक मुख्य विषय हैं—

ईश्वर, वेदना, भाग्य ।

इन तीन विषयों को लेकर कवि ने अपनी प्रत्येक गज़ल में कुछेक शेऽर लाज़मी तौर पर कहने की कोशिश की है । अपने जीवन को वह तकलीफों की ऐसी प्रतिमा मानता है, जिसका भाग्य ईश्वर ने लिखा है । इसलिए यह तीनों विषय अन्योन्याश्रित हैं । एक शेऽर का भावानुवाद देखें—

"देन तेरी है मेरे कर्मों का दर्पण दाता,
तभी यह दुःख 'ओ ग़म सारे दिए हैं ।"

ईश्वर :- कवि शंभुनाथ आस्थावादी कवि हैं । इश्क के प्रति बात करते हुए कई बार वे सामान्य प्रेम को ईश्वरीय प्रेम में परिवर्तित करते दिखाई देते हैं । परंतु, अपने मर्यादावादी संस्कारों के कारण इश्क को उन्होंने ऐसे आमियाना ढंग से कभी प्रस्तुत नहीं किया जो हल्की वाह-वाही की अपेक्षा रखता हो । प्रेम जैसे उदात्त विषय पर वे निहायत कलात्मक ढंग से क़लम चलाते हैं । नपे-तुले शब्दों में भाव की सूक्ष्मता को रेखांकित करना उनका मुख्य अभिप्रेत है जिसे सफलता से क्रियान्वित किया गया है ।

मानव प्रेम, ईश्वर प्रेम की मूलभूत कड़ी है । व्यक्तिगत रूप से कवि को प्रेम का अभाव सालता रहा है । इसलिए जहाँ वह ईश्वर का साधारण एवं मर्यादानुमोदित गुणगान करता है, वहीं अधिकांश शेऽरों में वह उसके प्रति अपने हृदय के सैंकड़ों गिले प्रकट करता है । इसीलिए एक गज़ल के शेऽर में ईश्वर के प्रति उसका उद्‌बोधन है कि कण-कण में उसका वास है । हर हृदय में उसका प्रकाश है । फिर जगह-जगह उसे ढूँढते फिरने का क्या औचित्य । इसी गज़ल के अन्य शेऽर में वह ईश्वर के प्रति तनिक रोष का प्रदर्शन करते हुए पूछता है कि मानव के लिए यदि किसमत का लिखा भोगना नियत है तो आदमी उसके दर पर सिर क्यों झुकाए, सिजदा क्यों करे ? वस्तुतः कवि यह मान चुका है कि ईश्वर उसकी हृदयगत भावनाओं के प्रति सहानुभूति-शून्य है । उसके आगे गिड़गिड़ाने का कोई लाभ नहीं । एक पत्थर से न्याय मांगने से क्या होगा । उसका कहना है कि ईश्वर से उसे सिवा कष्टों से कुछ नहीं मिला । इसलिए वह संवेदनाहीन बुत मात्र है । ईश्वर के प्रति इस मृदु रोष की जड़ें कवि के नित्यप्रति के जीवन में गहरे चली गई हैं और निरंतर उसे दुःख की अनुभूति कराती हैं । उसकी मान्यता है कि तकलीफदेह छाले स्वतः प्रसूत नहीं हैं । यह ईश्वर की देन हैं । इसलिए मालिक और बंदे के रिश्ते में बंधे मानव को ईश्वर से जो कुछ मिले, उसे हंसते हुए स्वीकार कर लेना चाहिए ।

कुछेक शेऽरों में कवि शंभुनाथ ने सीधे ईश्वर को संबोधित किया

है । इन में से कुछ में वह ईश्वर संबंधी सामान्य विचारों का प्रकटन करता है, शेष में सीधे उत्तम पुरुष में उसे संबोधित करते हुए हृदय के उद्‌गार व्यक्त करता है । उसका कथन है कि ईश्वर नाम के सहारे यह सृष्टि चल रही है । किंतु, मैंने जब तेरा नाम जपा मुझे अपनों में बेगाने दिखने लगे । चूंकि भारतीय मनीषा मानती आई है कि ईश्वर का नाम अज्ञान के पर्दे को दूर कर देता है, यह मेरा है, मैं इसका हूँ, मोह-माया से ग्रस्त इस दृष्टिकोण को मात्र ज्ञान के सहारे भेदा जा सकता है । जैसे काई और कचरे से भरे तालाब में फिटकरी की बुकनी डालने पर मैल का पर्दा फट जाता है और जल साफ दिखने लगता है, उसी तरह ईश्वर का नाम स्मरण मोह-ममता जनित माया को मिटा देता है । दूसरे अर्थों में नाम स्मरण से व्यक्ति 'ज्ञान' का अधिकारी होता है । परंतु शंभुनाथ एतद्विषयक एक अलग अनुभूति का वर्णन करते हैं । नाम स्मरण से उन पर अपने-पराए का मिथ्या भेद अधिक स्पष्ट होने लगता है ।

स्वयं को सदा एकाकी पाकर वे दूसरों में अपनत्व की तलाश करते रहे हैं इसलिए वे यह भी कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर नाम की आस लगाए रखता है । इस तरह नाम स्मरण कइयों के लिए सहारा बना हुआ है तो कइयों के लिए बहाना ।

वेदना :- दुःख, कष्ट, वेदना की त्रयी को शंभुनाथ अपने भाग्य का अभिन्न अंग मानते हैं । ईश्वर को संबोधित कुछ शेऽरों में उन्होंने परम सत्ता से सीधे बात करने का प्रयास किया है । वे बारबार उससे इस बात का शिकवा करते हैं कि उसने दुःखों की एक बड़ी पिटारी उन्हें सौंप दी । भाग्य में एकाध सुख भी लिख दिया होता तो बोझ झेलने में आसानी हो जाती । "हे प्रभु कभी तुम मुझे मिल जाते तो मैं तुम्हें अपनी दुःख भरी दास्तान सुनाता । मुझे विश्वास है इसे सुनकर तुम स्वयं व्यथित हो उठते । मानव के लिए तूने अनंत दुःख, मृत्यु, आशा, अभिलाषा और जीवनेच्छाओं का सृजन किया । वह क्या इतना गया गुज़रा था कि उसे इन वेदनाजात वस्तुओं का बोझ उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा । भगवन, मैं

तेरे अहसानों को किस तरह भुलाऊँ, तेरी दुनिया ने मुझे मेरी सहन शक्ति से बढ़कर दुःख दिए हैं ।"

अपने जीवन को वे कटुता और वेदना का सार मानते है । उनका मानना है कि यदि इस सार तत्त्व का संबल उनके हाथ में न होता तो जीवन को निभा पाना अति दुष्कर हो जाता । अन्यत्र वे अपने जीवन को ऐसी खंडहर दुकान मानते हैं, जहाँ बासी मनोकामनाओं और अभिलाषाओं का सौदा रखा है । यह दुकान एक सुनसान स्थान पर स्थित है और इसमें पड़ी वस्तुओं का कोई ग्राहक नहीं । उसकी मानसिक पीड़ा का दूसरा कारण है एकाकीपन की भावना और किसी समर्थक के अभाव का अहसास ।

तकलीफों भरी लंबी जीवन-यात्रा में अंततः वे वेदना को दुनिया का अनमोल खज़ाना, कष्टों को ईश्वरीय देन, आँसुओं को अमूल्य मोती मानने लगे हैं । इसीलिए वे कहते हैं कि एक दर्दभरा दिल लेकर मैं बेदर्द क्यों कहलाऊँ । यह अनमोल-अनंत खज़ाना जो मेरे हाथ लगा है, इसे क्योंकर गंवाऊँ । यह पीड़ाएँ मैंने बहुतेरे कष्ट झेलकर एकत्र की हैं । बूंद-बूंद करके जमा की हुई यह अतुल राशि मैं क्यों गंवाऊँ । इसी कारण कवि अपने को कष्टों का सम्राट मानकर ईश्वर से कहता है—तुम्हारे संसार में मैं भिखारी सही, किंतु अपने संसार का मैं स्वामी हूँ । अतएव अपनी इस पदवी को मैं लाज नहीं लगाऊँगा । वेदना के नैरंतर्य में कवि को अब अपार सुख की प्रतीति होने लगी है । कष्टों के प्रति अभ्यस्तता के कारण उसका कथन है कि यदि कभी भूले-भटके चैन के क्षण आए तो ऐसा लगा मानो सुख नहीं एक बेढव बोझा-सा सिर पर आन टिका है । सुख उधार में मिली वस्तु लगने लगता, क्योंकि सुखानुभूति सदा क्षणिक और अस्थाई हुआ करती थी । इसके विपरीत दुःख सदा जीवन के साथी रहे हैं । जन्म के साथ ही हजारों दुःखों से पाला पड़ा । दो दिन की कहानी में उम्र भर का विलाप मिला । उनका कथन है कि अपनी जीवन नैया को कभी मल्लाह की आवश्यकता नहीं रही । इस नैया की यात्रा मंझदार से आरंभ हुई थी और अंत तक यह मंझधार में रही ।

गज़ल की विशेषता यह है कि इसमें जितना कुछ प्रत्यक्षतया कहा जाता है कवि का अभिप्रेत उससे कहीं अधिक होता है । उसका मन्तव्य शब्दों की सीमा लाँघकर, एक वृहद आशय की स्थापना करता है । यद्यपि ऊपर उल्लिखित शेऽर के भावार्थ में मात्र ऐसी किश्ती का वर्णन हुआ है जो सदा मंझधार में रही, तथापि आशय की परिसीमा में कवि ने न केवल अपने जीवन में कष्टों की अत्यता एवं सुख-दुःख के साथी के अभाव की बात भी कही है, बल्कि आजन्म दुःखों की धारा में बहने और कहीं किनारा न दिखने की व्यथा को भी खूबसूरती से इसमें समाहित कर डाला है । चूंकि इस किश्ती का खेवनहारा कोई नहीं है, इसलिए अपने अकेलेपन की पीड़ा को भी कवि ने सफलता से व्यंजित किया है । कष्टों की विकराल बाढ़ में कवि तकलीफों की फूत्कारती लहरों में अपने को अकेले बहते हुए पाता है । उसे ज्ञात है कि संसार सागर में कोई किसी की सहायता के लिए नहीं कूदता, तो भी उसकी इच्छा है कि—काश कि कोई किनारे से झूठी धैर्य बंधाती आवाज़ ही लगा देता । सहानुभूति के एक शब्द के लिए तड़प रहे कवि का कहना है कि उम्र भर खूब ज़हर पिया, अनेक कसाले चुप-चाप सहे, छाती के भीतर एक अलाव-सा पलता रहा । परंतु पराजय के स्वीकृति सूचक निःश्वास नहीं छोड़े, आहें नहीं भरीं ताकि मेरे हृदय की अग्नि से संसार न धधक उठे । किए-अनकिए अपराधों ने बैर निभाया । अनेक ऋतुएं बदलीं, किंतु बलिहारी इस नियति के कि यह नहीं बदली ।

दुःखों की सीमा बढ़ जाने पर वह सीधे ईश्वर से कहता है—"हे प्रभु, तेरी दुनिया में जीने के लिए दिल बड़ा होना चाहिए, उसके बाद चाहे सारे जहान के कष्ट मिल जाएं । व्यथा की इस निरंतर यात्रा में साधारण व्यक्ति निश्चय ही डाँवाडोल हो जाएगा । फिर भी न जाने ऐसा क्या था कि अपना लहू पी-पी कर जीते रहे । सुख-दुःख के बनजारे बने हम दुःख पाने के लिए सुख बेचते रहे ।"

निजी जीवन में कष्टों, तकलीफों और असफलताओं के निरंतर

दबाब ने कवि हृदय को गज़ल के माध्यम से मुखर होने के लिए प्रेरित किया है । पारिवारिक जीवन में पत्नी के लंबे दिमागी विकार ने उन्हें पीड़ा का अनंत स्रोत प्रदान किया था । इसके अतिरिक्त परिचित लोगों को जातिवाद और अन्य हथकंडों से जिस ऊँचाई पर पहुँचते देखा था और स्वयं योग्य होने पर भी मर्यादाओं का साथ न छोड़ने के कारण जो-जो असफलताएं उन्होंने झेली थी वे उनके हृदय का शूल बन गईं ।

अतीत का स्मरण करते हुए वे कहते हैं कि तूफान के उपरांत घोंसले का एक मात्र निःशेष तिनका इस बात का द्योतक है कि कभी हम भी सुख और सौभाग्य के स्वामी थे । खंडहर भी अतीत की रुणझुण और जीवंतता का अद्‌भुत इतिहास कहते हैं । अब तो दशा यह है कि कभी हमने पलभर विश्राम करने के लिए एक तिनके का आश्रय चाहा तो देखते ही देखते आसमान कुपित हो उठा । झंझावात और वज्रपात की परवाह किए बिना हमने पेड़ की चोटी पर अपना घोंसला बना डाला । इस भाववाले शेऽर में कवि को गिला है कि जब कभी उसने कहीं सुख की छवि ढूँढी, ईश्वरीय नियति तूफान बनकर झूलने लगी । किंतु हम बेधड़क अपनी आशाओं के घोंसले का निर्माण करते रहे—

"न पूछ हकीकतें आँधी-ओ-तूफानों की,
बस इन के सहारे मेरी उम्मीद पलती है ।"

इससे स्पष्ट है कि कवि कठिनाइयों को ही जीवन मानता है । सुख और दुःख में से कुछ न होने से तो बेहतर है आदमी के पास इन दोनों में से कोई एक तो हो, क्योंकि बेलाग व्यक्ति जिसे किसी से कोई मोह-ममता न हो, और न ही जिसकी कोई मंज़िल हो—उसका जीवन लोगों के लिए व्यंग्य का घर बन जाता है । इसलिए कवि पीडा के दिशासूचक को निरंतर अपने अंग-संग रखना चाहता है ताकि उसका जीवन दिशा-भ्रमित न दिखे ।

अपने जीवन के तूफानों का प्रत्यक्षदर्शी स्वयं कवि है । एक शेऽर में उसका कहना है—अपनी आँखों के समक्ष मेरा घोंसला धधक उठा । देखते ही देखते प्रत्येक तिनका सुलग उठा । इस आग को

जो बुझाने आए थे हंसी-हंसी में उन्होंने जलती में घी उंडेल दिया ।"

गज़लों में निज व्यथा को व्यक्त करने के लिए उन्होंने 'कड़वे घूँट', 'लहू के घूँट', 'जहर के घूँट,', 'फूत्कारते तूफान', 'जीवन की थकान', 'छाले', 'पतझड़', 'दुःख-कसाले', 'वेदना', 'कलेजे की धुखन' आदि पदों का बारंबार प्रयोग करके अपनी उदासी, निराशा और हताशा को काव्यात्मक स्वरूप में प्रकट किया है । सपाट-बयानी से बचने के लिए कई स्थानों पर शब्द-चित्र गढ़ने का सफल प्रयास भी किया गया है ।

भाग्य :- शंभुनाथ ने डोगरा समाज से सांस्कृतिक विरासत के रूप में जो परंपराएं और विश्वास प्राप्त किए हैं, उनमें नियतिवाद और भाग्य विषयक धारणाओं का प्रबल अंश भी है । भाग्यवाद उस अतार्किक दर्शन का ऐहिक स्वरूप है, जिसमें क्रिया, घटना, कार्य आदि का कारण किसी तर्क-संगतता की कसौटी पर नहीं, बल्कि 'पूर्व-निर्धारिति' पर अवस्थित माना जाता है । पौर्वात्य जन-मानस की निष्ठा है कि पूर्व जन्म के कर्मों का फल हम इस जन्म में भुगतते हैं । परंतु शंभुनाथ कर्मों को अपने जीवन का लेखा-जोखा न मानकर इसे ईश्वर द्वारा लिखित एवं पूर्व निर्धारित मानते हैं—"मेरे कर्मों का दर्पण, हे दाता तेरी ही देन है । इसलिए तूने संसार के तमाम गम और दुःख बुहार कर मेरे भाग्य में डाल दिए ।"

आत्म-संधान की अनन्य कृति 'योग वाशिष्ट' में पौरुष और दैव के समुच्च्य से सफलता का होना संभव माना गया है, अर्थात् निर्धारिति के साथ-साथ व्यक्ति के सही प्रयत्न (कर्म) भी उसे कामना की सिद्धि तक ले जाते हैं । किंतु लोक-मानस कार्य-कारण का न्याय न मान कर प्रत्येक घटना को भाग्य का विधान मानकर चलता है । पहाड़ से लेकर ज़र्रे तक, मानव से लेकर चींटी तक, ये सब विधि की रचना माने जाते हैं । यही कारण है कि लोक-वाङ्मय और मानवीय अभिव्यक्ति के अन्य साधनों में भी भाग्यवादी स्वर प्रखरता से मुखरित होते सुनाई पड़ते हैं । भाग्य की प्रभु-शक्ति के समक्ष मनुष्य अपने को नगण्य मानता है । सृष्टि का सारा विधान

कठपुतली के खेल-सा है । इस खेल का नियता तमाम सूत्र थामे अदृश्य में विराजमान है । होनी, तकदीर, भाग्य, किसमत, संयोग, विधि, विधात्री, विधाता आदि शब्द भाग्यवादी दर्शन का अभिन्न अंग हैं । डोगरी भाषा के लोकगीतों, लोककथाओं तथा लोक-विश्वासों में भाग्य को एक समर्थ शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है । इन में भाग्य को ईश्वर की इच्छा माना जाता है ।

डोगरा समाज की जिस पीढ़ी से शंभुनाथ का संबंध है, उसमें परंपरागत जीवन मूल्यों के प्रति एक प्रकृत मोह दिखाई देता है । भाग्यवाद की पूर्व-पृष्ठभूमि पहले से मौजूद थी, किंतु अगस्त 1947 ई. में भारत की स्वतंत्रता, देश का विभाजन तथा उसके बाद के तेज़ परिवर्तनशील घटनाक्रम ने कवि को भाग्य के प्रति और अधिक आस्थावान बना डाला । रजवाड़ाशाही में जीवन के कई मोड़ों पर उपेक्षा झेल चुके शंभुनाथ स्वाभाविक रूप से दुःखी थे, परंतु स्वाधीनता भी उनके जीवन के लिए कोई सुसमाचार लेकर नहीं आई । अलबत्ता, जीवन की कठिनाइयां ही बढ़ती दिखीं । इसलिए, भाग्य पर उनकी निष्ठा दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई । आस्थावादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण के कारण हृदय की टीस को व्यक्त करने के लिए ही शंभुनाथ ने गज़ल को माध्यम के रूप में चुना और स्वानुभूत को शेऽरों के माध्यम से मुखर किया । भाग्यवाद के प्रति उनकी अटूट आस्था की जड़ें उनके इस अहसास की भूमि में कहीं गहरे पैठ रही हैं कि उनका जीवन असफलता, व्यथा और दुःख की लंबी गाथा है । इस गाथा को तकदीर के अनुसार घटित होना ही है । ईश्वर ने जब भाग्य लिखा तब उसने जीवन में दुःखों के अनुपात का ध्यान न रखा । इसीलिए ईश्वर से गिला करते हुए वह कहता है—प्रभु, भाग्य लिखना तुम्हारा दिन-रात का धंधा है । हम भी तेरे बंदे हैं । हमारी बारी ज़रा सोच-समझ कर भाग्य को गढ़ते-तराशते तो कितना अच्छा होता । जिस तकदीर के बल पर तूने मुझे जिम्मेवारियों के पहाड़ उठाकर जीवन के कठिन रास्ते पर ठेल दिया, वैसी तकदीर के बलबूते पर यदि कोई देवता भी धरती पर मनुष्य बनकर आता तो वह भी पीड़ा से कराह उठता ।

शंभुनाथ को विश्वास है कि जितने कष्ट बाध्यतः उन्होंने सहे हैं, वे मानव की सहन शक्ति से परे की बात है । उनका कथन है कि जब ईश्वर द्वारा भाग्य का वितरण किया जा रहा था, तब वे मीलों दूर थे । जो पास थे उन्होंने तमाम खुशियां पा लीं । जो दूर थे उनके हिस्से में आहें और क्रंदन आया । भाग्य सदा हमसे वैर कमाता रहा । ता-उम्र खींचा-तानी की एकसारता जीवन में व्याप्त रही । तकदीर के आगे किसी का वश नहीं चलता । इस बात को कवि ने इस तरह रखा है—"भाग्य मदरसे की तख्ती नहीं है कि इसे धो-पोंछ कर नई इबारत लिखी जा सके । न ही विधाता तहसील कार्यालय का मुन्शी है कि उसकी मिन्नत-समाजत करके कुछ रियासत ही मांगी जाए ।" नियति के प्रति अपना अटूट विश्वास व्यक्त करते हुए कहते हैं कि लाख जतन करने पर भी बात बनती नहीं है । जब बननी हो तब स्वतः अनेक कारण एकत्र हो जाते हैं । उन्हें यह अहसास है कि कुछ पास होने पर ही नसीबों का महल ऊँचा उठता है । यदि भाग्य लिपि ही रिक्त है तो व्यर्थ प्रयत्नों की रेतीली दीवार चिनने से क्या लाभ । जनमानस चूंकि भाग्य को अटल मानता है, इसलिए वही होगा तो नियत है । उस स्थिति में भक्ति, ज्ञान अथवा पूजा-अर्चना की प्रासंगिकता क्या है ?

गिले-शिकवे के बाद कवि के स्वर में कुछ-कुछ अनास्था और उद्दंडता का मिश्रण भी होने लगता है । फिर इस निश्चय के साथ कि ललाट की लिपि के आगे कोई बस नहीं चलेगा, अपने-आप को समझाता है—हे मन, निराश न हो । यह ज़िन्दगी ऐसे ही चलती रहेगी । होनी बिना हुए टलेगी नहीं ।

व्यक्तिनिष्ठता का प्रतिफलन :

अनुकूल भाग्य न होने की कड़वाहट और तज्जनित शिकायतों के वशीभूत गज़लों में कहीं-कहीं भाव के दुहराव का दोष स्पष्ट दीखने लगता है । उनकी प्रायः प्रत्येक गज़ल में ईश्वर के प्रति गिले को अथवा भाग्य में बंधी कटुता को आधार बना कर कुछ शेऽर

लाज़मी तौर पर लिखे गए हैं । इस दुहराव से यह बात स्पष्टतया समझी जा सकती है कि भोक्ता के स्तर पर इन अनुभूतियों ने कवि चिंतन पर अमिट छाप छोड़ी है । गज़लों में अभिव्यक्त व्यक्ति-निष्ठता स्वानुभूत का प्रतिफलन मात्र है ।

डोगरी में गज़ल शैली के समारंभ से ही इस में स्थानीय संस्कृति की खुश्बुएं भरने का प्रयत्न किया जाता रहा है । यही कारण है कि इसमें 'शमअ-परवाना', 'जुल्फ और बुलबुल' की नवाबी परिकल्पना को स्थान नहीं मिला । इसमें प्रायः शायर की कड़वी अनुभूतियां, व्यक्तिगत एवं समाजगत घुटन ही मुख्यता रेखांकित हुई है । इतना ही नहीं, 'जाम-साकी', 'मीना और शराब ' के नाम पर वाह-वाह लुटाने वाले हल्की रुचि के श्रोताओं के लिए भी डोगरी गज़ल में रिवायती उर्दू गज़ल के नज़ारे नदारद हैं । आधुनिक डोगरी गज़ल ने अपनी अलग साख्त कायम की है । भाव-पक्ष को निजी परिवेश और आवश्यकता के अनुरूप गढ़ा है ।

इस अलग पहचान के लिए शंभुनाथ तथा अन्य अग्रणी गज़ल-गो शायरों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । उन्होंने आरंभ से ही गज़ल को मात्र एक शैली के रूप में अपनाया और विचारधारा को परंपरागत भारतीय धरातल से संपृक्त किए रखा । दुःखवाद, भाग्यवाद और ईश्वर आदि को गज़ल का विषय बनाना शंभुनाथ द्वारा इस दिशा में किए गए सद्प्रयासों की पुख्ता बानगी प्रस्तुत करता है ।

कविता के प्रमुख स्वर

विचार, कल्पना और अनुभूति, इन तीन तत्त्वों के संयोग से कवि की मानसिक परिधि और वैचारिक परिसीमा का द्योतन होता है । अपने भाव-संसार को वाणी प्रदान करते हुए कवि चौगिर्द के वातावरण से प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करता है । सामाजिक दायित्व की भावना उसकी साहित्यिक दृष्टि के विकास में सहायक होती है । अतएव साहित्य संबंधी उसकी समझ तत्कालीन सामाजिक वातावरण और आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरणा पाती है । दूसरे शब्दों में सृजनात्मक कृति मूल रूप से ऐसा मनस् प्रतिबिंब है जो लेखनी द्वारा शब्दाकार प्राप्त करता है ।

शंभुनाथ निष्ठावान मानसिकता के कवि हैं । यह निष्ठा मानवतावाद के मूलभूत सिद्धांतों से उत्प्रेरित है । समय-समय पर उनका वास्ता जैसी स्थितियों से पड़ता रहा है, उन्हें मानवता, राष्ट्रीय हित अथवा सौंदर्यवादी दृष्टि के अनुरूप वे कविता में ढालते रहे हैं । कवि का प्रयास रहा है कि प्रत्येक ऐसे विचार बिंदु को सहेज लिया जाए जो उसकी मानसिकता एवं वैचारिकता को प्रभावित करता है ।

नई साहित्यिक प्रवृत्तियों को जानने-अपनाने के क्षेत्र में वे उदारतावादी रहे हैं । साथी कवि मित्रों को जिस साहित्यिक डगर की ओर बढ़ते देखा, उन्होंने भरसक प्रयास किया कि वे भी उसी धारा में अपनी कलम मांज सकें । इसी गुणग्राही वृत्ति के कारण उनके कविता रूपी मधु-कोष में विभिन्न फूलों का महकीला मधु एकत्र हुआ दिखता है । दूसरे लोगों से दिशा प्रभाव लेकर भी वे अपनी पहचान के प्रति सचेत है ।

सीधी सादी कविता के रूप में प्रस्फुटित काव्यानुभूति उत्तरोत्तर भाव-सौंदर्य से संपन्न होती गई है । समय, परिस्थिति एवं विचार

की भिन्नता के कारण उनकी कविता में विभिन्न भाव-तरंगें संगुफित हुई दिखलाई पड़ती हैं । अंततः यह काव्यानुभूति विचार गांभीर्य की परिणति पर पहुँचती है । उनकी कविता का समग्र एवं समयक मूल्यांकन करने पर कुछेक स्वरों की निशानदेही सहज ही हो जाती है । यथा–

1. इतिवृत्तात्मकता
2. उपदेशात्मकता
3. स्वच्छंदतावाद
4. मानवतावाद
5. प्रगतिवाद
6. राष्ट्रीय भावना

कुछेक कविताओं में एकाधिक स्वरों को एक-साथ सुना जा सकता है, जबकि इतिवृत्त-आधारित कविताओं में बहुधा एक ही स्वर की अनुगूंज सुनाई पड़ती है । यह स्वर एक ओर यहाँ उनकी कविता के प्रवृत्यात्मक अध्ययन में सहायक होते हैं, वहीं उनकी कविता यात्रा के विकासात्मक सोपानों के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

इतिवृत्तात्मकता :

स्वतंत्रता पूर्व की डोगरी कविता में वर्णनात्मकता एक प्रमुख शैली के रूप में प्रचलित रही है । डोगरी कविता का उद्‌गम लोकगीतों की धारा से उद्‌भूत दिखाई पड़ता है–इसलिए आरंभिक डोगरी कविता पर लौकिक संस्कृति का प्रभाव बड़ा स्पष्ट होकर उभरा है । शंभुनाथ के चचेरे भाई पं. हरदत्त शर्मा जो कि डोगरी कविता में अग्रदूत की हैसियत रखते हैं, मुख्यतः धार्मिक विषयों पर कविताएं लिखा करते थे और उनकी शैली वर्णनात्मक थी । चूंकि शंभुनाथ काव्य-सृजन की ओर तब प्रेरित हुए जब हरदत्त डोगरी में कविता लिखना छोड़ चुके थे, इसलिए यह तो नहीं माना जा सकता कि उन पर हरदत्त का प्रत्यक्ष प्रभाव था, किंतु वर्ण्य-विषय के रूप में वस्तु स्थिति और शैली के रूप में वर्णनात्मकता का सलीका उन्होंने

संभवतया उन्हीं से पाया था । वस्तुतः डोगरी कविता के शुरुआती दौर में मात्र कथा अथवा स्थिति के यथातथ्य वर्णन को विशेष महत्ता प्राप्त थी । कभी-कभार स्थितियां ऐसी हास्यास्पद होतीं कि उनसे स्वतः व्यंग्य फूट पड़ता । दीनूभाई पंत की 'शैहुर पैहुलो गे' में निहित तीखा व्यंग्य और विनोद उस दौर में इस शैली की सफलता का मुंह बोलता प्रमाण है ।

कथात्मक कविता में विस्तार अपेक्षित होता है, इसलिए ऐसी कविता के लिए वर्णनात्मक अथवा वस्तु परिगणन शैली सर्वाधिक उपयुक्त शैली सिद्ध होती है । प्रकृति के कार्य-व्यापार के प्रति जन-मानस में प्रकृत औत्सुक्य भाव रहता है । कवि चूंकि जनमानस की भावनाओं को ही शाब्दिक पहरावे में प्रस्तुत करता है, इसलिए स्वाभाविक है कि शुरुआती दौर की डोगरी कविता विषय और शैली की दृष्टि से उस समय के जीवन की तरह ही सादा है । अपने कवि मित्र अलमस्त की भाँति शंभुनाथ ने भी प्रकृति का यथातथ्य वर्णन करके परंपरा का सार्थक वहन किया है । देखें–

मट्ठी-मट्ठी चाल्ला चलै दी ऐ बदली पांदी चफैरे घरमोल ।
रली-मिली पक्खरू फुम्मनियां पादे बोलन हेरै-फेरै बोल ।

•••

काले डिग्गलें कालिएं धारें, न्हेर पाए दा रारें-पारें ।
रुक्खें पेई गेआ रोल ।

•••

ब'र मोइए ब'र, मेरै बी ब'री जा, भाग जले दा इक बारी तरी जा।
कैह्‌ पानी परचोल ।

–शंभुनाथ

रिमझिम-रिमझिम बूंदें लाई,
सड़े-सुक्के दे होई गे सैल्ले-
कचूच सैल्लियां धारां ।
खुशिएं दें बिच बूह्‌टे नचदे,
पक्खरू गान मल्हारां

–अलमस्त

'बदली' को विषय बनाकर शंभुनाथ ने दो कविताएं लिखी हैं । आकाश में बदली घिर आने पर विभिन्न प्राणियों पर क्या-क्या प्रतिक्रिया होती है, बदली विषयक प्रथम कविता में इसका विशद वर्णन किया गया है । पंछी झूमने लगते हैं । पपीहा पी-पी कहते हुए अपने परों से आकाश को तोलने लगता है । प्रेम के रथ आकाश में आगे बढ़ते हुए एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था होने लगते हैं । काले बादलों और काली पर्वत श्रृंखलाओं पर हर कहीं अंधियारा घिरा दिखाई देता है । इसे देखकर पथिक अपनी यात्रा भंग करके सुरक्षित ठिकाने ढूँढने लगते हैं । प्रेमी लोग प्रेम की सुखद नींद में सोने लगते हैं । सब को प्रभावित करने वाली इस बदली से कवि मन अछूता नहीं रहना चाहता । इसलिए सीधे उसे संबोधित करके कह उठता है कि—मुई एक बार मुझ पर बरस जा जिससे यह भस्मीभूत भाग्य तर-बतर हो जाए । तेरे गर्जन से मन डोल रहा है । स्मृति में विस्मृत दुःख लौटने लगे हैं, उन्हें बीनते-बीनते मैं थक-हार गया हूँ । यदि तू न बरसी तो मेरे हृदय की प्रवंचनाएं कैसे दूर होंगी । मेरे कष्ट कौन हरेगा ।

बदली चूंकि मानसिक उद्वेलनों की प्रेरक और भावोद्दीपक है, इसलिए कवि के कष्ट एवं प्रवंचनाएं प्रेम के क्षेत्र से संबद्ध हैं, यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है ।

विवेच्य 'बदली' (प्रथम) नामक कविता का भाव-साम्य अलमस्त के प्रभाव को दर्शाता है, परंतु बाद में लिखित 'बदली' (द्वितीय) में शंभुनाथ ने मौलिक अवधारणा की प्रस्तुति की है । इसमें 'बदली' कवि-मानस पर एक प्रश्न चिन्ह बनकर अंकित हुई दिखाई पड़ती है । मानवीकरण की पाश्चात्य पद्धति के अनुरूप उसे आकाश में लेटी हुई एक सुंदरी के रूप में चित्रत किया गया है—जिसने अपने केश बिखेर रखे हैं । उसके अलौकिक सौंदर्य के समक्ष चन्द्रमा शरम का मारा बाहर नहीं निकल रहा और तारे भी मुंह छिपाए बैठे हैं । यदि कवि पूर्वोक्त वर्णन शैली में इसी भाव को व्यंजित करता तो निश्चय ही यह वस्तु परिगणन अथवा वस्तु वर्णन शैली के कारण बिलकुल आम-सी कविता बन जाती । इसलिए इस कविता में न

केवल उन की प्रामाणिक काव्य-दृष्टि झलकती है, बल्कि भाव और शिल्प की दृष्टि से भी यह एक उपलब्धि के समान है ।

आकाश में छाई बदली को स्त्री रूप में प्रकल्पित करके उसके उन्मुक्त विहार के प्रति विभिन्न पदों में उसके सात रूपों का चित्रण किया गया है । यथा—

1. यह कोई अल्हड़ ग्राम्य बाला है अथवा शहरी छबीली है जो संभवतया अपने तमाम अलंकरण अथवा प्रकृत उपादान किसी को दान में देकर यहाँ चली आई है । वह अपनी मूल्यवान संपदा लुटा कर क्रोध में लाल-पीली होकर चहुं दिशाओं को धूल धूसरित कर रही है ।
2. अथवा यह कोई परित्यक्त नव-व्याहता है जो अपनी ससुराल और पीहर त्याग कर यहाँ चली आई है । इसे इसके पति ने बुलाया तक नहीं । यह बेचारी अपनी मर्यादा में बंधी रहकर कोई आश्रय नहीं खोज पाई—इसलिए यह आकाश के अधबीच बिना किसी सहारे के लटक रही है ।
3. अथवा यह ऐसी विरहिणी है जिसका कन्त लौट आने की आस बंधाकर कहीं गया हुआ है । प्रतीक्षा की घड़ियां व्यतीत करने के लिए आँसियां डालते न जाने कितने वर्ष बिता चुकी है ।
4. अन्यथा यह ऐसी अबला है जिसका सुहाग लुट चुका है । फूलों से सजा रहने वाला सुहाग चिन्ह 'सालू' अब वैधव्य की मैली चादर बन चुका है । आज तमाम संबंधी उसे सहारा देने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं ।
5. अथवा यह ऐसी बहिन है जो अपने भाई को राखी बाँधने या भैया दूज का टीका लगाने के लिए अपने छींके से मिष्ठान्न ढूंढ रही है । चाँद की थाली में वह तमाम तारों को शक्करपारों के समान समोए हुए है ।
6. अथवा यह ऐसी विमाता है जो कोप भवन में एक नया छल खेलने की ताक में लस्त पड़ी हुई है । सौत पुत्रों के कारण मन में उठती हुई दुविधा के वश वह अपने हठ को पूरा करना चाहती है । न जाने इस कैकेयी ने अब

किस राम को बनवास दिलवाने की ठान रखी है ।

7. यह अल्हड़ सुंदरी आकाश में चुपचाप बिना हिले-डुले बैठ नहीं पाती और बार-बार करवट बदलती है, जिससे कई मासूम सितारे इसके नीचे कुचले जाते हैं । इस मदमस्त नवयौवना के सामने वे बोल तक नहीं पाते ।
8. यह तो आग और पानी के संयोग से उत्पन्न ऐसा बुत है जिसने आकाश का सहारा ले रखा है । इतनी बड़ी धरा पर इसे कोई सहारा नहीं मिला । इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया स्वरूप सब को नीचा दिखलाने के लिए आकाश में जा चढ़ी है ।

अंतिम पद में कवि कल्पना-लोक से पुनः धरती पर लौट आता है और कहता है कि मैं तो भ्रमित हो गया था, परंतु वह नहीं भूली कि वह महज़ एक बदली है । गर्मी की यह मदमस्त बैरिन एक ही छलांग में गगन में ललकार बनकर खड़ी हो गई है । अब यह धरती रूपी दुल्हिन के बारे भरेगी ।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि शैली में तनिक बदलाव से ही इतिवृत्तात्मक सपाट-बयानी से न केवल बचा जा सकता है, प्रत्युत् काव्य-सौष्ठव को भी उद्दीप्त करना संभव है । 'बदली' पर लिखी दो कविताओं को यदि एक ही सिक्के के दो पहलू मानें तो प्रथम जहाँ सपाट-बयानी से ग्रस्त दिखाई देता है, वहीं द्वितीय पहलू में गहराई और सौंदर्य के आयाम उसे अलग शिनाख्त प्रदान करते हैं ।

प्रकृति वर्णन के अतिरिक्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कथात्मक एवं घटनात्मक कविताओं में भी किया गया है । इतिवृत्त मूलक कविता में कवि कथानक प्रस्तुत करने से पूर्व एक सुचारु भाव-भूमि बाँधता है ताकि कथ्य को एक तर्क-संगत आधार पर खड़ा किया जा सके । प्रारंभ न केवल सहज और रोचक प्रतीत होना चाहिए, प्रत्युत् इसमें पाठक अथवा श्रोता में औत्सुक्य जागृत करने की क्षमता भी होनी चाहिए । कथ्यात्मक कविता में अपनी लेखनी द्वारा श्रेष्ठ शब्द-चित्र गढ़ने में शंभुनाथ सिद्ध-हस्त हैं । 'विधवा' में ढलती सांझ का चित्रण, 'पत्तन' में गांव के प्रशांत वातावरण और 'फूलां दा कुर्ता'

में गाँववासी नसीबू बरवाले का अपनी बेटी को निर्देश देना आदि निहायत सरल एव सहज-ग्राह्य चित्रण हैं । उनकी इतिवृत्त सृजन की क्षमता आगे चलकर महाकाव्य (रामायण) की रचना में परिपाक को प्राप्त हुई है ।

उपदेशात्मकता :

कवियों की जिस पीढ़ी से शंभुनाथ का संबंध है, उसके समक्ष कविता यथार्थ चित्रण द्वारा मात्र जीवन की तल्खी उभारने की विधा नहीं है । पुरानी पीढ़ी के कवि इसे समाज को संदेश देने का माध्यम मानते रहे हैं । उनकी मान्यता रही है कि कविता द्वारा समाज को नई दिशा दी जा सकती है । अथवा इस दिशा में उन्मेषकारी प्रयास तो होना ही चाहिए । इसलिए बुराइयों पर चोट करने के लिए और देशवासियों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए पुरानी पीढ़ी के कवि विशेष रूप से सजग रहे हैं । इस दायित्व का निर्वाह करते हुए शंभुनाथ अपनी कविताओं द्वारा एक उपदेश पाठकों को अवश्य देते हैं ।

उन्होंने आदमी को क्रियाशील रहने का, समय की आवाज़ को पहचानने का, देश प्रेम का और मानवता की सेवा का संदेश दिया है । 'बगदी गंगा' में वे पिछड़ी हुई श्रमजीवी जातियों को प्रेरणा देते हैं कि आज़ादी के बाद उन्नति की गंगा सब के लिए प्रवाहित होने लगी है । हे श्रमिक ! तू अपनी मेहनत से पेट भरता है, इसलिए अब मानसिक गुलामी को भी उतार फेंक । तू औरों के समान है, इसलिए अपना अधिकार त्यागना उचित नहीं । उठ और काम कर । बहती गंगा में नहा ले । समय ने करवट बदली है । तेरे ओठों पर मुस्कान खिली है । अब बे-झिझक होकर हंस ले । तू कमर कस कर दौड़ में शामिल हो जा ।

कवि की हार्दिक इच्छा है कि दलित जातियां स्वतंत्रता के फल की भागीदार बनें, देश एवं मानवता की उन्नति में बराबर की शरीक हों । इस प्रयोजन से वह कविता को उनके प्रोत्साहन और प्रेरणा का स्रोत बना देता है । "बिगड़ी दी चाल" शीर्षक कविता में

देशवासियों को स्मरण दिलाता है कि हमें आज़ादी के निमित्त दी गई लाखों कुरबानियों का ऋण उतारना है । आओ प्रण करें कि द्वैत भाव या भेदभाव के झगड़े मिटाकर स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मर मिटेंगे ।

"देशवासियो, मन से संशय मिटाकर शत्रु को खदेड़ दो । यदि कोई अंगुली उठाए तो उसकी बाजू काट डालो । तभी बात बनेगी । जब शत्रु ही न रहेगा तो मानसिक भय भी जाता रहेगा । समय को पहचान कर कुछ दिन देश के निमित्त अर्पित करो ।"

'कार कर' नामक कविता तो एक लंबा उपदेश ही है, जिसमें तमाम लोगों से मेहनत करने के लिए कहा गया है । शंभुनाथ के समक्ष मेहनत देशभक्ति का पर्याय है । 'आराम है हराम" पं. नेहरु के इस इतिहास प्रसिद्ध संदेश को इस कविता में विस्तार प्रदान किया गया है । मेहनत से हम देश का भाग्य संवारते हैं । देश का भाग्य, ही हमारा भाग्य है । विदेशी दासता से मुक्त होकर भी हम आलस्य और बेकारी के गुलाम हैं—यह बहुत बड़ी विडंबना है । इन बेड़ियों को तोड़ने पर स्वतंत्रता का सही रूप उद्घाटित होगा ।

"मेहनत के बदले उजरत पाकर न केवल तेरा कल्याण होगा, बल्कि देश भी फले और फूलेगा, क्योंकि तेरी गरीबी से देश गरीब होगा और अमीरी से अमीर । तू बदलेगा तो देश बदलेगा ।" शंभुनाथ मेहनत को भाग्य की कुंजी स्वीकार करते हुए देशवासियों से इसकी महिमा का बखान करते हैं ।

महात्मा गाँधी के संदेश—"शत्रु से भी प्यार करो" के विपरीत शंभुनाथ हिंसा को हिंसा से मिटाने में विश्वास रखते हैं । उनका मानना है कि अहिंसावाद का उदार दर्शन वस्तुतः बौद्धिक और मानसिक रूप से उन्नत शत्रु के संदर्भ में तो लागू हो सकता है, किंतु दरिंदगी की सीमा लाँघ चुके शत्रु के समक्ष अहिंसा मात्र कायरता है । इसलिए ईंट का उत्तर पत्थर से देना सर्वथा उपयुक्त है । सीमांत क्षेत्र होने के कारण और इस पर शत्रु की लोलुप दृष्टि के कारण

राज्य के लोगों ने उसके कुटिल मनोरथ का दंश एकाधिक बार सहा है । 1948 ई. में कबायली लुटेरों द्वारा हत्याएं और लूटपाट, 1965 ई. तथा 1971 ई. के भारत-पाक युद्ध, 1962 ई. में भारत-चीन युद्ध की तबाही को डोगरा लोगों ने भी पूरे देश के साथ झेला है । भारत की लड़ाका सैन्य जातियों में से एक होने के कारण इस में शत्रु से प्रेम करने का सिद्धांत मानसिक स्वीकृति नहीं पा सका । युद्ध और तज्जनित विभीषिका का शिष्टाचार अलग होता है । इसीलिए वे एक योद्धा की भाँति अपने पर हाथ उठाने वाली बाजू को उखाड़ फेंकने की ललकार देते हैं । मातृ-भूमि की स्वतंत्रता उन्हें हर हालत में प्रिय है ।

परंतु, वे जानते हैं कि मानव संस्कृति की चरम उपलब्धि शांति है । शांत वातावरण में ही मानवीय प्रतिभा, सृजन, कल्पना और विचार अपने शिखर पर पहुँचते हैं । प्रेम और सद्भाव के पेड़ का अमृत फल शांति है । अतएव मानवीय विकास का ध्येय इसी अमृत फल के उत्पादन से संबद्ध होना चाहिए, न कि विनाश से । मानवीय अस्तित्व अविवेक की अंधी खाई में डूब नहीं जाना चाहिए ।

विकास के नाम पर मानव ने मृत्यु के जो अनेकानेक विनाशकारी साधन तैयार किए हैं कवि उन्हें मिटाने का और मानव मात्र के कल्याण का संदेश देता है । उसका कथन है कि जब विश्व मानव निर्भय होकर स्वयं जिएगा और दूसरों को जीने देगा, सुख-दुःख में परस्पर साझीदार होगा, स्वर से स्वर मिलाकर जीना सीखेगा, किसी के आचार-विचार को लताड़ेगा नहीं, तभी सही दिशा में विकास हो पाएगा ।

उपदेशमूलक कविताओं द्वारा कवि जिस संदेश को दुनिया के सामने अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहता है, वे हैं—

(क) नैतिक उत्थान
(ख) परस्पर सद्भाव
(ग) स्वतंत्रता
(घ) बराबरी

(ङ) विश्वमानव की समृद्धि और शांति

इन मन्तव्यों को लेकर उन्होंने चाहे अलग-अलग कविताएं नहीं लिखीं तो भी विभिन्न कविताओं में विद्यमान इन स्वरों को आसानी से पहचाना जा सकता है ।

स्वच्छंदतावाद :

कुछेक कवियों की रचनाओं पर स्वच्छंदतावाद का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है । परंतु यहाँ यह अंग्रेज़ी और हिंदी की भाँति एक प्रवृत्ति बनकर अलग से पनप नहीं पाया । डोगरी कवियों ने प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं स्वच्छंदतावादी वैचारिकता को दर्शाया है । प्रकृति चित्रण विषयक कविता के रचे जाने की पृष्ठभूमि में दो कारण मुख्य हैं :-

1. प्रकृति के क्रोड़ में अवस्थित होने के कारण के लोगों का प्रकृति से निकटता का सहज नाता ।
2. साहित्य में प्रकृति के कार-व्यापार के चित्रण की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपरा का प्रभाव ।

डोगरांचल की समृद्ध लोकगीत परंपरा मे प्रकृति-चित्रण के गीतों का पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होना, एक ओर जहाँ पृष्ठभूमि के प्रथम कारण की पुष्टि करता है, वहीं कवियों द्वारा प्रणीत साहित्य में इस के प्रति विशेष झुकाव दूसरे कारण का साक्ष्य बनता है ।

शंभुनाथ की कविता 'बदली' (द्वितीय) में मानवीकरण अलंकार के प्रयोग से बदली पर नारीत्व के आरोप द्वारा परंपरागत आलंबन-उद्दीपन प्रणाली को नया संस्कार दे दिया गया है । स्थूल में सूक्ष्म की प्रकल्पना कौतूहल को जागृत करती है । छायावादी परिपाटी का अनुसरण करते हुए बदली का एक अल्हड़ बाला, परित्यक्ता, विरहिणी, कुपित विमाता, बहन आदि के रूप में चित्रण करने के उपरांत कवि अलौकिक से वास्तविक धरातल पर उतरता है स्वच्छंदतावाद में वायवी सूक्ष्म चित्रण का विशेष महत्त्व है । विवेच्य कविता के विभिन्न पद वस्तुतः प्रकृति के सूक्ष्म वायवी चित्र

ही हैं । यह एक तथ्य है कि अंग्रेज़ी और हिंदी दोनों भाषाओं में स्वच्छंदतावादी कवियों ने बदली को आधार बनाकर सुंदर कविताएं लिखी हैं । बदली के माध्यम से जीवन के किसी विशिष्ट सत्य का उद्घाटन किया गया है । इसी विषय पर शंभुनाथ विरचित कविता तीव्र अनुभूति से प्रेरित एक सुष्ठु रचना है । यह आश्चर्य का विषय है कि ऐसी सुंदर और सशक्त कविता लिखने के बाद उन्होंने छायावादी शैली में लिखने का और आगे प्रयास क्यों नहीं किया ।

मानवतावाद :

यद्यपि राष्ट्रवाद उनकी कविता का प्रमुख स्वर है तो भी अपनी राष्ट्रवादी विचारधारा को वे संकीर्णता की उस गर्म हवा से बचाए रखते हैं जो मानव मात्र के कल्याण में बाधक बनती हो । उन्होंने गरीब और मध्यम श्रेणी के लोगों के समर्थन में मानवीय पहलू से कविताएं लिखी हैं । इन कविताओं में मानव मात्र की सुरक्षा और भलाई की भावना परिलक्षित होती है । मानव सुखी है तो मानवता का भविष्य सुरक्षित है । यदि मानव परस्पर राष्ट्र, जाति, सीमा, रंगभेद आदि के प्रश्नों पर लड़ता रहेगा अथवा विनाश के लिए परमाणु बम और रासायनिक शस्त्र बनाता रहेगा तो मानव अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा । आज जब कि दुनिया में लाखों लोग भुखमरी और गरीबी से तड़प रहे हैं, उनकी अनदेखी करके, शांति को तिलांजिली देकर मृत्यु के साधनों का निर्माण क्या न्यायोचित कहा जा सकता है । इस तरह के अनेक प्रश्नों को लेकर उन्होंने 'सिद्धी-सारी गल्ल' (सीधी-सी बात) नामक कविता में विज्ञान के असंतुलित विकास पर प्रश्न-चिन्ह लगाए हैं । जो वस्तु मानवता के सुख एवं समृद्धि के लिए प्रयोग में लाई जानी चाहिए थी, वह मानव जाति के कष्ट-वर्धन के लिए प्रयुक्त हो रही है । दिशाहीन विकास के कारण अनेक विकृतियां मानव समाज में जन्म ले रही है जो कि अंततः उसे ले डूबेंगी । सीनाज़ोरी और धौंसपट्टी ने भलमानसता को भगा दिया है । आज मानव, मानव के दुःख में सम्मिलित नहीं होता । आज यदि वह इतना निस्पृह हो जाता

है कि किसी के कष्ट में सहाई नहीं होता या किसी भूखे की चीख-पुकार पर उसके काम नहीं आता तो यह दुनिया रहने के योग्य नहीं रह जाएगी । यदि मानव अपना-आप पहचान ले और यह मर्म समझ ले कि संसार चार दिनों का मेला है तो मानव जीवन पर छाए संकट के बादल छंट जाएंगे और जीवन सुखमय हो जाएगा ।

"माहनू केहू, मानवता केहू ऐ, की जग चार दिने दा मेला ।
माहनू खोआंदा कैत मशाफर केहू हुन्दा मौती दा रेला ।"

मनुष्य यदि तीन बातें याद रखे कि वह मानव क्यों कहलाता है, मानवता क्या है और यह कि अंततः जीवन की परिणति मृत्यु में होगी तो अनेक झंझट समाप्त हो जाएंगे ।

प्रगतिवाद :

जिस डोगरी संस्था के मंच से शंभुनाथ ने अपनी प्रथम कविता का पाठ किया था, वह मुख्यता प्रगतिवादी लोगों का मंच थी । डोगरी भाषा के आंदोलन के दृष्टिगत यद्यपि इस मंच से परंपरावादी कवियों को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया, किंतु पाँचवे-छटे दशक में संस्था में श्रेष्ठ साहित्य का निकष प्रगतिवादी मूल्यों को माना जाता था । युवा कवियों का दल वैचारिकता की दृष्टि से साम्यवाद का समर्थक था । दीनूभाई पंत और रामनाथ शास्त्री प्रभृति वरिष्ठ प्रगतिशील लेखक डोगरी संस्था द्वारा परिचालित आंदोलन के संचालक थे । संस्था में पठित प्रगतिवादी रचनाओं पर खुली दाद मिलती थी, जिसके कारण अनेक प्रतिक्रियावादी कवि और लेखक जनवादी विचारधारा में ढल जाते ।

शंभुनाथ चूंकि मूल रूप में डोगरी संस्था से संबद्ध रहे थे, इसलिए व्यक्तिगत रूप में परंपरा के समर्थक होते हुए भी वे प्रगतिवाद के स्पर्श से अछूते न रहे । डोगरी लेखकों को दुविधा की दोहरी मानसिकता से उबारने में ओर सामंतकालीन मानसिकता से मुक्ति दिलाने में प्रगतिवादी विचारधारा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । इस के द्वारा कविता को समाज और राजनीति से जोड़ने का अद्‌भुत

कार्य संपन्न हुआ । पुरातन और नूतन मूल्यों की विपरीत दिशाओं में प्रवाहित धाराओं के मध्य टिके हुए शंभुनाथ परिवर्तन की आँधी को ठगे-से देखे जा रहे थे । किंतु शीघ्र ही वे प्रगतिवाद के प्रभाव तले बोलते दिखाई देने लगे—

"भुक्खे-नंगे बदशक्लें गी, हुन आसरा थ्होंदा जा करदा,
ए जुग बदलोंदा जा करदा ।"

भुखे-नंगे और फटेहाल लोगों के प्रति कवि की सहानुभूति उसकी मानवतावादी दृष्टि का ही अंग है । एक समय था जब कवि सामंतवादी मूल्यों का समर्थक रहा था । पर, बाद में सामंतशाही के गिरते हुए महल की कड़ियों की आवाज़ सुनता है—

"मैहूलें दे बरगे कड़कै दे ।"

समाज के किन्हीं वर्गों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सामंती अकड़-फूं के अवशेष विद्यमान हैं । इसीलिए कवि कहता है कि पुरातन शोषक मानसिकता के वस्त्र अभी पूरी तरह नहीं उतरे और न ही जनता रूपी घोड़े से सामंती रिवाज और चलन का पलान ही उतरा है —

"जुल्ले-पलाने न लग्गे दे पैहुले,
मन नि खरैदा गूंढा शंगार ।"

'पलाने' शब्द के प्रयोग द्वारा कवि को यह बतलाना अभीष्ट है कि चाहे रजवाड़ाशाही का जूआ उतर चुका है, परंतु जनता अभी परंपरा की लकीर पीटती जा रही है । "ब्हार" नामक कविता में भी ऐसे ही विचारों की अभिव्यक्ति हुई है । बहार को प्रगति की संवाहिका माना गया है । दूसरे अर्थों में प्रवंचना में जी रहे लोगों के लिए समानता आदि के जन-जीवन विषयक मूल्य बसंत ऋतु के समान हैं ।

कवि का कथन है कि श्रमिक-अधिकारों के नए युग का सूत्रपात होने से पूंजीवाद घबरा उठा है । उसके दिल की धड़कन से स्पष्ट है कि माया (पूंजीवाद) का सूर्य अस्त होने वाला है । रूढ़िवादी मूल्यों को नकारते हुए कवि 'बसंत' के पर्व को मज़दूर और पूंजीपति के संबंधों की दृष्टि से देखता है । सामंती संस्कृति के प्रतीक बसंत

पर्व पर वह कहता है कि यह तो अमीरों, राजाओं और मंत्रियों का पर्व है जो आभूषणों से लद-फद कर अपनी पूंजी का प्रदर्शन करते हुए घूमते हैं । उनके पास खाने-पहनने को बेहतरीन वस्तुएं होती हैं । अपनी शान-ओ-शौकत से वे गरीबों को निरंतर अपनी अमीरी का आभास कराते रहते हैं । गरीब मज़दूर किस बूते पर बसंत मनाएगा, जिसकी कुल-बिल संपत्ति मात्र एक कंबल होता है । भार ढो-ढोकर वह थक-हार जाता है, फिर भी टुकड़े-टुकड़े के लिए चिंतित रहता है । आनंद प्राप्ति का कोई साधन उसके पास नहीं होता । अभावों के कारण वह निःश्वास फेंकता रहता है, बच्चे धरती पर लोटते और रोते रहते हैं, भूखों सोते हैं और संसार अपनी मौज-मस्ती में निमग्न रहता है ।

कवि प्रगतिवादी आशावाद की अभिव्यक्ति द्वारा उस युग की कल्पना करता है जब तमाम साधारण लोग सुखी होंगे । उनके पास खाने-पीने को होगा, नग्न तन ढकने के लिए साधारण वस्त्र होंगे, रहने को झोंपड़ी और तमाम सुविधाएं होंगी । जब भुखमरी न होगी, नाम लेने के लिए भी दुःख नहीं होंगे । प्रत्येक खेत में फसलें लहलहाएंगी और हरेक बच्चा पढ़ा-लिखा होगा—तभी सही बसंत आएगा ।

बसंत पर्व का डोगरी भाषा के आंदोलन के शुरुआती दौर में विशेष महत्त्व रहा है, क्योंकि 1944 ई. में इसी दिन इस आंदोलन की दाग-बेल डाली गई थी । बाद के वर्षों में बसंत दिवस पर आयोजित कवि सम्मेलन में डोगरी संस्था से संबद्ध प्रत्येक कवि का प्रयास होता कि हर बार बसंतोत्सव पर नई कविता पढ़े । कुछेक कविताएं मात्र विरुद्धावली की श्रेणी में आती थीं, जबकि शंभुनाथ द्वारा लिखित बसंत इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है कि इस में वे अभावग्रस्त गरीबों का पक्ष प्रस्तुत करना नहीं भूलते ।

अन्यत्र भी वे सर्वहारा की महिमा बखानते हुए कहते हैं कि अमीर की अमीरी का निर्धारण तुझे करना है, गरीबों को आश्रय देना है । संसार का असली बादशाह तू है । तुझे ही जग से भूख और दुःख का निवारण करना है—

"बादशाह असल ते जग्गै दा तूं ऐं,
भुक्खा दे दुक्ख ते तूऐं मटाने ।"

प्रगतिवाद में धार्मिक दृष्टिकोण का कोई स्थान नहीं है । अपनी रचनात्मकता के आरंभिक दौर में यद्यपि शंभुनाथ ईश्वर का कहीं थोड़ा-सा ज़िक्र करते दिखाई दे जाते हैं तथापि इसमें किंचित् मात्र ही सही कवि का उपेक्षापूर्ण रवैया अलक्षित नहीं रहता । ईश्वर के स्थान पर समय और परिवर्तन को प्रतिष्ठापित किया गया है । अंततः वे इस महत्त्वपूर्ण केंद्र में सर्वहारा को ला बिठाते हैं । 'बगदी गंगा' और 'कार कर' कविताओं में युगों से उपेक्षित चले आ रहे मेहनतकशों के अधिकारों की बात मुखर की गई है । लोक-काव्य में ईश्वर को 'सच्चा बादशाह' कहा गया है । शंभुनाथ किसान को असली बादशाह मानते हैं, क्योंकि दुनिया से भूख मिटाने के लिए वह अपने पसीने से धरती को सींचता है ।

उत्पादक शक्तियों के प्रति हृदय में अत्यंत विश्वास और गौरवानुभूति की प्रेरक भावनाएं विद्यमान हैं । प्रगतिवाद से पूर्व साहित्य में प्रायः संभ्रांत वर्ग को केंद्रीय हैसियत प्राप्त थी । 1935-36 ई. में इस नवोन्मेषकारी उद्घोष से मेहनतकशों को साहित्य की केंद्रीय इकाई बनाया गया । शंभुनाथ ने बदलते युग की नब्ज़ पहचान कर न्याय, यथार्थ और प्रगतिवाद को अपनी कथनी और लेखनी द्वारा विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार किया । 'क्लर्क' के दयनीय जीवन-वृत्त को विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार किया । 'क्लर्क' के दयनीय जीवन-वृत्त को विषय बनाकर लिखी कविता में शंभुनाथ यद्यपि स्थूल विषय से जूझते दिखाई पड़ते हैं तो भी सूक्ष्म भावानुभूति के ज़ोर से वे इसे सफलता से निभा पाए हैं । प्रगतिवाद के प्रभाव तले नारेबाज़ी का जो खतरा दरपेश रहता है उस के प्रति वे लगातार सचेत रहे हैं । विषय के सूक्ष्म एवं अंतरंग पक्षों को उद्घाटित करके कविता में मार्मिकता का संचार करते हैं ।

परंपरागत भाव-बोध ईश्वर भक्ति को संसार से पार लगाने का साधन मानता है । पार लगाने से तात्पर्य जीवन को सफल बनाने से है । साथ ही मृत्यु के उपरांत भव-सागर को पार करने की

मिथिकीय दृष्टि भी इसमें निहित है । शंभुनाथ न तो ईश्वर को और न ही कर्मों को जीवन सार्थक बनाने का साधन मानते हैं । रिवायती भाव-बोध के विपरीत वे मेहनत को जीवन सफल बनाने का साधन मानते हैं । उनका कथन है कि अब वे गले-सड़े सामंती बंधन और बुराइयां नहीं रहीं, जबकि कारीगरों को विवश होकर बेगारों का जीवन व्यतीत करना पड़ता था—

"हुन निं ओ अलामतां, कीरने कशामतां,
कारीगर बचारे गी, किसमती दे मारे गी ।"

मेहनत की महत्ता बतलाते हुए वे कहते हैं कि मेहनत की कुंजी से तेरे भाग्य के बंद ताले खुल जाएंगे । आलस्य त्याग कर हिम्मत के आश्रय में जाने की देरी है, तुम्हें धूलि में सोना मिलेगा । तिनके के पीछे लाखों की दौलत छिपी मिलेगी—

"उट्ठ हां ब्हादरा खोल हां अक्ख,
कक्खे दे ओहूलै-ई छप्पे दा लक्ख ।"

मेहनत रूपी किश्ती का नाविक बन और अपनी किसमत के उस किनारे पर पहुँच जा जहाँ दौलत के खज़ाने छिपे हैं । संसार में जीवन को एक अभियान समझना होगा तभी सफलता के द्वार पर दस्तक दी जा सकेगी । अभियान मेहनत का पर्याय है । मनुष्य अपने दृढ़ आत्म-विश्वास के बल पर पत्थरों और चट्टानों से टकरा जाता है । परिवर्तन के चक्र को घुमाए रखने के लिए आदमी स्वयं को समय की चक्की में झोंक देता है —

"ए जुग चक्की दा चक्कर ऐ ।
चक्की दा पक्का पत्थर ऐ ।
माहनू बी कैसा बक्खर ऐ ।
ब'ट्टे नै लैंदा टक्कर ऐ ।
गाला बनिऐ इस चक्की दा ।
चक्की दे पुड़ परताऽ करदा ।
ए जुग बदलोदा जा करदा ।"

चक्की के प्रतीक द्वारा कवि ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत की पुष्टि की है । विकास की चिरंतन प्रक्रिया में

घात-प्रतिघात-न्याय से वस्तु अपने ही विरोधी तत्त्व को जन्म देती है । मानव अपना बलिदान देकर विकास के चक्र की गतिशीलता को कायम-दायम रखता है और अवसर उपस्थित होने पर चक्की के इस भारी-भरकम पत्थर को उल्टा देता है । अतएव, ऐतिहासिक विकास में एक युगांतकारी दृश्य प्रस्तुत हो जाता है । मानव शक्ति के प्रति कवि को असीम विश्वास है । वह एकाधिक कविताओं में मेहनतकशों का मानव सभ्यता और संस्कृति के मूल निर्माता के रूप में बखान करता है ।

अपनी अनथक मेहनत और प्रतिभा से श्रमिक वर्ग संसार की तमाम वस्तुओं का उत्पादन करता है । जन्म से मरण तक यह दूसरों के सुख-ऐश्वर्य के लिए खटता है ।

प्रगतिवादी साहित्य में शोषित के साथ-साथ शोषक की चर्चा भी खुलकर की जाती है । इससे रचना में उथलापन आने का खतरा प्रस्तुत रहता है । संभवतया इसीलिए शंभुनाथ ने शोषक वर्ग का वर्णन कम ही किया है । उन्होंने प्रायः शोषण की तमाम जिम्मेवारी समय पर डाल दी है । जहाँ कहीं शोषक शक्तियों के वर्णन की आवश्यकता कवि महसूस करता है, वहाँ उन्हें परोक्ष स्थिति में रख कर, मात्र सुझाव द्वारा उनके प्रभाव का बखान किया जाता है । शोषक का अन्य पुरुष के रूप में वर्णन करते हुए 'बगदी गंगा' नामक कविता में कहता है कि कारीगर सदा उसके भांडे-बरतन गढ़ता रहा—परंतु वह (शोषक) कभी संतुष्ट न हुआ । अपने दबदबे और अख्तियार के नशे में वह इन्हें अपने कमीन मात्र मानता था, इन से सेवा के काम लेता था, मगर इन्हें भरपेट भोजन नहीं देता था । सलीके से जीने के अधिकार की बात तो अलग, वह इन्हें अपने सामने रोने तक नहीं देता था ।

शोषित वर्गों को जात-कुजात के गर्त में धकेल कर इन्हें पढ़ने-लिखने से वंचित रखा गया । पिछड़ी जातियों में सम्मिलित इन विपत्तिग्रस्त लोगों को बोलने और मन की बात मुखर करने का अधिकार तक न था । इनके आगे बढ़ने के प्रत्येक मार्ग पर रुकावटें खड़ी की गई थीं—

"बिपता च ए जीभ खोली नि सकदे,
सदिएं दे दब्बे दे बोली नि सकदे ।
इब्बी न माहनू ते जीने दा हक्क ऐ,
फ्ही इन्दे अग्गें की लग्गा दा डक्क ऐ ।"

मात्र पिछडी जातियों के कष्टों का चित्रण करके शंभुनाथ अपने कवि-कर्म की इतिश्री नहीं कर लेते, अपितु इन्हें अधिकारों के प्रति जागृत भी करते हैं । युगों पुराने कष्टों के निवारणार्थ वे उन्हें कमर कसकर समय प्रवाह की बहती धारा में कूद पड़ने को प्रेरित करते हैं । वरिष्ठ डोगरी कवि दीनूभाई पंत द्वारा लिखित मज़दूर-किसान के युगारंभ संबंधी गीत से प्रेरित होकर शंभुनाथ शोषित कामगारों से उन पर जबर्दस्ती लपेटा गया शोषण का कंबल उतार फेंकने का आह्वान करते हैं । नए युग में प्रवेश के लिए पर तौलने का निदर्शन करते हुए कहते हैं –

"उठ हुन, उठ हुन, उठ मजूरा,
स्वांक हां जिंद ते सुट्ट हां भूरा ।"

"स्वतंत्रता अपने संग जनतंत्र का तोहफा लेकर आई है ! अब तू छाती तानकर हुंकार भर । लज्जा, अधीनता और नम्रता सदैव प्रासंगिक रहने वाली वस्तुएं नहीं हैं । यह सामंती शिष्टाचार, शोषक शक्तियों द्वारा कमज़ोर लोगों पर थोपा गया था । अब कोई किसी का दास नहीं है । इस युग में जो मेहनत करेगा, वही सुख का अधिकारी होगा । समय के करवट बदलने से तेरे ओठों पर मुस्कान खिल उठी है ।"

प्रगतिवाद से संबद्ध जो स्वर शंभुनाथ की कविता में मुखर हुए हैं, वे इस तरह हैं–

(क) मानव की असीम शक्ति और श्रम की महत्ता ।
(ख) किसान-मज़दूर के प्रति सहानुभूति । पूंजीपति और शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह ।
(ग) संकीर्णता और रूढ़ियों पर चोट । यथा–

"जाती-कुजाती दा भरम नि कोई,
बक्खरा-बक्खरा धरम नि कोई ।"

(घ) सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता ।
(ङ) सरल भाषा एवं शैली ।

इसके साथ ही उन्होंने प्रगतिवाद से संबद्ध कतिपय महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की पूर्ण अवहेलना भी की है । यथा –

1. रूस आदि साम्यवादी देशों का गुणगान–

कट्टर राष्ट्रवादी होने के कारण वे किसी बाहरी देश और उसकी लाल सेना की स्तुति नहीं कर पाए ।

2. धर्म विरोध–

यद्यपि वे धार्मिक उन्माद के पक्षधर नहीं हैं और न ही धार्मिक भेदभाव के समर्थक हैं तथापि इसे अफ़ीम कहकर त्याज्य करार नहीं देते । ईशवरीय सत्ता के प्रति उन्होंने अधिक नहीं लिखा, तो भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण की कविता 'बगदी गंगा' में अप्रत्यक्ष रूप से गरीब लोगों की दुर्दशा का निहोरा ईश्वर से किया गया है –

"जनता दे बिच्च ऐ जे इन्दा शमार,
फ्ही की नेई सुनदा तूं इन्दी पुकार ।"

3. उन्मुक्त प्रेम–

डोगरा समाज में प्रेम को नितांत व्यक्तिगत मामला माना जाता है । दुनियावी प्रेम पर उन्होंने दो-एक कविताएं ही लिखी हैं और उनमें विषय को निहायत शालीन ढंग से निभाया गया है । उन्मुक्त प्रेम को आधार बनाकर डोगरी की संपूर्ण काव्य यात्रा में एक भी कविता आज तक नहीं लिखी गई । इस विषय को लेकर शंभुनाथ के दुस्साहस न करने की पृष्ठभूमि को सहज ही समझा जा सकता है ।

4. नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण–

छटे-सातवें दशक तक डोगरा समाज में संयुक्त परिवार को आदर्श परिवार माना जाता रहा था । स्त्री को घर में केंद्रीय हैसियत प्राप्त थी । प्रगतिवादी साहित्यकार पति को ऐसे शोषक के रूप में चित्रित करते हैं जो पत्नी का शोषण करता है, जबकि सामंतवाद के गर्भ से निकले डोगरा समाज में पति-पत्नी के मध्य पाँचवें-छटे दशक तक ऐसे समीकरण नहीं उभरे थे, जिन के आधार पर पति को शोषक

मानकर नारी के समान अधिकारों की घोषणा की जाती ।

अतएव स्पष्ट है कि प्रगतिवादी सिद्धांतों को उन्होंने निजी वैचारिकता के साँचे में ढाल कर ग्रहण किया है । तत्कालीन समाजिक वस्तु-स्थिति के प्रति आँखें मूंदकर उन्होंने प्रगतिवाद का अंधानुकरण नहीं किया । प्रगतिवाद को आंशिक रूप से ग्रहण करने का एक कारण यह भी है कि उन्होंने इस साहित्यिक प्रवृत्ति से उन्हीं सिद्धांतों को लिया है जो उनके मानवतावादी अथवा राष्ट्रवादी सिद्धांतों की पुष्टि करते हैं । दूसरे उन्होंने कभी कम्यूनिस्ट होने का दम नहीं भरा । इसलिए प्रगतिवाद को अपने वक्त का यथार्थ मानते हुए भी उन्होंने इसे मात्र एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया । यह 'वाद' जहाँ कहीं उनकी व्यक्तिगत धारणा का उल्लंघन करके आगे बढ़ता है, उसी बिंदु पर वे उसे त्यागना श्रेयस्कर समझते हैं ।

राष्ट्रीय भावना :

कौम, जन्म-भूमि तथा सस्कृति की अलग शिनाख्त की भावना, राष्ट्रीयता का प्रमुख लक्षण है । यह ऐसी अनुभूति है जिसके माध्यम से किसी भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक खंड के लोग अपनी अस्मिता और विशिष्ट पहचान के प्रति सजग एवं सक्रिय रहते हैं । धर्म, भाषा, संस्कृति और इतिहास की साझ के साथ-साथ राजनीतिक और आर्थिक महत्त्वाकांक्षाएं राष्ट्रीय भावना को जन्म देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहती हैं ।

भारत जैसे विस्तृत आकार के देश में, जहाँ विभिन्न भाषाएं, संस्कृतियां और अनेक क्षेत्रीय आकांक्षाएं पनप रही हैं, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की साझ, राष्ट्रीय भावना के स्फुरण में मुख्य भूमिका निभाती दिखती है । बहुसंख्यक समाज की धार्मिक एकता और आधुनिक भाषाओं का संस्कृत-मूलक होना अथवा संस्कृत द्वारा प्रभावित होना, क्षेत्रीय संस्कृतियों की विशिष्टता के बावजूद उनका वृहद भारतीय संस्कृति के महासागर में समाहित हो जाना—अनेकता में एकता के चंद उदाहरण हैं । क्षेत्रीय भावनाओं के स्वाभाविक

प्रस्फुटन के साथ-साथ सदियों से चला आ रहा सांस्कृतिक संश्लेषण भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में एक निर्णायक तत्त्व है ।

प्रगतिवादी साहित्य शोषण-विहीन विश्व समाज की बात करता है और रूढ़ियों को अस्वीकार करके नई मानव संस्कृति की जो बात करता है व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रीय भावना उसके आड़े आती है । अतएव साम्यवादी देशों में उभरने वाले मतभेदों को मात्र सैद्धांतिक और आर्थिक हितों का टकराव मान लेना पूर्ण सत्य नहीं है । राष्ट्रीय हितों के प्रति निष्ठा के कारण, एक ही सिद्धांत अर्थात् मार्क्सवाद के अनुयायी होते हुए भी रूस और चीन में सीमा विवाद का उठना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि फिलहाल राष्ट्रीयता के घेरे में रहते हुए ही मानव कल्याण की बातें करना अधुनातन समाज का कटु यथार्थ है । सदियों पहले भारत भूमि से सारी पृथ्वी को एक घर मानने का उद्घोष हुआ था —

"पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एक राष्ट्र ।"

प्रकारांतर से यह विश्व मानव की परिकल्पना है । परंतु आज के विश्व मानव की राजनीतिक परिकल्पना एक अव्यहार्य दर्शन प्रतीत होती है । यही कारण है कि शंभुनाथ ने प्रगतिवाद को राष्ट्रीयता की सीमाओं के भीतर ग्रहण किया है ।

एक बूढ़ा देश जो सदियों की गुलामी के उपरांत आज़ादी के कायाकल्प से पुनः युवा होकर अंगड़ाई ले रहा था, उसकी विशाल सीमाओं पर लोलुप दृष्टि गड़ाए दुष्ट शत्रु खड़ा था । आज़ादी की प्रातः से सन् 1971 ई. तक भारत की सीमाएं चार बार आक्रांताओं का दुस्साहस झेल चुकी थीं । यही कारण है कि डोगरी कवियों में राष्ट्रीय-भावना दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई है । राष्ट्र की अपेक्षाओं से जुड़कर ही कोई साहित्य सार्थक एवं सारगर्भित कहलाता है ।

शंभुनाथ ने राष्ट्रीय भावना का उद्बोधन इस तरह किया है—

1. **जन्म-भूमि डुग्गर से प्रेम**—कवि डुग्गर को अपना घर मानकर इसके सुंदर प्राकृतिक उपादानों का हृदयहारी वर्णन करता है । उसका कथन है कि प्रकृति के उपहारों से लदी डुग्गर भूमि के आगे स्वर्ग

की दृश्यावलि भी फीकी पड़ जाएगी—

"जाड़-दराड़ न घने-घनेरे, रुक्खें भरोची दी इक इक रक्ख,
प्रभु दी देन न नेहु नजारे, फिक्का बझोदा सुरगै दा दक्ख ।"

उसका विश्वास है कि यहाँ प्रवाहित होने वाली प्रेम की गंगा तमाम लोगों के मन की मैल धोने में समर्थ है । इससे स्पष्ट है कि अपने क्षेत्र से लगाव वस्तुतः राष्ट्र प्रीति का ही वाचक है ।

जन्म-भूमि के प्राकृतिक सौंदर्य के वर्णन के उपरांत वह डोगरा जाति की ऐतिहासिक उपलब्धियों, वीर-विद्वान एवं कलावंत सपूतों के कारनामों का स्मरण करता है ।

स्वदेश की आन-मर्यादा पर मर मिटने वाले मियां डीडो, सीमाओं की रक्षा के लिए प्राण-न्यौछावर करने वाले ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह, ज्ञान एवं साहित्य के क्षेत्र में नाम कमाने वाले पं. काकाराम, दत्तू, गंगाधर, रामधन एवं गंगाराम को कवि श्रद्धा से स्मरण करता है । यह लोग डोगरा भूमि के सपूत हैं । इनके आगे डोगरा जाति श्रद्धावनत है । कवि का कथन है, डोगरा लोग तो मात्र देश-प्रेम को जीवन का सार मानते हैं —

"देसै कन्ने प्यार, बस इन्दे जीनै दा सार ।"

क्षेत्रीय सौंदर्य-उद्‌भावना और क्षेत्रीय सपूतों के गौरवशाली कामों के बखान द्वारा चाहे क्षेत्रीय भावनाओं की तुष्टि होती दीखती है, किंतु अंततोगत्वा इन के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं की पुष्टि ही होती है । जन्मभूमि और इसके वीरों का गुणगान करके कवि भारतीयता के पेड़ की जड़ों को सिंचित करता है । इन जड़ों द्वारा क्षेत्रीय भावनाएं, राष्ट्रीय भावना में तिरोभाव पा लेती हैं । यह बात ध्यान देने योग्य है कि डोगरी कवि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सर्वोपरि मानते हैं । कहीं भी क्षेत्रीय भावना को उभार कर उन्होंने राष्ट्र के विघटन का न्यौता नहीं दिया । उनके द्वारा उद्‌बुद क्षेत्रीयता, राष्ट्रीय भावना की उपकारक है ।

2. **देश-प्रेम**—देश के ऋतु चक्र, पेड़-पौधों, पर्वत-नदियों के गौरव गान के साथ-साथ कवि देशवासियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें नई दिशा का संकेत भी करता है । बहुरंगी भारत भूमि

कवि चित को बेहद भाती है । उसे लगता है इसका प्रत्येक तिनका सोने और चाँदी का बना है । इस रंगीले देश में हरेक कण हीरे के समान है-

"बांकड़ा, रांगड़ा देस ऐ तेरा,
ओए अपना थापिऐ पत ते रख ।
हीरें तुल्ल एदी ऐ इक-इक फिंगर,
सुन्ने ते चांदी दा इक-इक कक्ख ।"

चरित्र किसी भी राष्ट्र के निर्माण के लिए एक मूलभूत शर्त है । यदि नागरिक सद्-चरित्र होंगे तो राष्ट्र का नाम ऊँचा होगा । देश के निमित्त स्वार्थ का परित्याग परमावश्यक है—

"जे मान देसै दा चाहुन्नां स्वारथै गी छोड़ ।"

स्वार्थ की जड़ में भेदवादी दृष्टि होती है, इसलिए उसे भी लाज़मी तौर पर छोड़ना होगा—

"दूई दा परदा हटा जे घर बनाना ऐ ।
ए सारा देस तेरा, तेरा इक घराना ऐ ।"

दूई या द्वैत का पर्दा ही भेद-भाव का सर्जक है । यहाँ द्वैतवाद अपने परंपरागत, रहस्यवाद या अध्यात्मवाद वाले अर्थ से अलग राष्ट्रीय एकता में बाधक भेदक दृष्टि का पर्याय है । द्वैत-भावना को मिटाकर ही हम घर बना पाएंगे । डुग्गर भूमि को घर और देश को घराना मानकर कवि राष्ट्रीय एकता की दिशा में अग्रसर होता है । यह एकता ही हमारी राष्ट्रीय चेतना का मूल स्रोत और जीवन-दायिनी शक्ति है ।

3. **निज संस्कृति पर गर्व**—संस्कृति हमारे अस्तित्व का दर्पण है, हमारी पहचान का साक्ष्य है । शंभुनाथ को भारतीय संस्कृति पर स्वाभाविक गर्व है । पाँच हज़ार वर्ष पुरानी यह संस्कृति समय के अनेक थपेड़े सहती हुई निरंतर पुख्ता और शालीन होती गई है । लोक-तत्त्व, पौराणिक मिथक और इतिहास-वृत्त आदि से प्रेरित कथ्य से भी राष्ट्रीय भावना का प्राकट्य हुआ है । सांस्कृतिक बिंबों के प्रयोग से कविता में धरती की सोंधी महक भर जाती है । इस तरह रचना राष्ट्रीय उद्‌भावना में निजी

अस्मिता का द्योतन करने लगती है ।

4. **स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जागरूकता की आवश्यकता**—स्वतंत्रता की रक्षा देश भक्ति का प्रथम दायित्व है । लंबे संघर्ष के बाद प्राप्त स्वतंत्रता को कायम रखना परवर्ती पीढ़ियों की सब से कठिन परीक्षा है । स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आवश्यक है प्रत्येक देशवासी इन सिद्धांतों का पालन करे—

(क) बलिदान की भावना
(ख) एकता
(ग) देश के प्रति निष्ठा

शंभुनाथ का कथन है कि आज़ादी ने हमें अनेक सुविधाएं प्रदान की हैं, जिनमें से कुछेक यह हैं—

(1) सुखमय जीवन
(2) उन्नति के समान अवसर
(3) भाग्य संवारने के लिए मेहनत के अवसर

बहार को आज़ादी का प्रतीक मानते हुए वे कहते हैं कि स्वतंत्रता के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन पर छाई अनिश्चितता के बादल छंट गए हैं । गरीब और अमीर के लिए उन्नति के समान अवसर उपलब्ध हुए हैं । परस्पर सहयोग से देश की तकदीर बदली जा सकती है । यदि हम आपस में लड़ने-झगड़ने में शक्ति ज़ाया करते रहेंगे तो आज़ादी का अमूल्य तोहफा खो देंगे । एकता द्वारा स्वतंत्रता की आधारभूमि को मज़बूत बनाया जा सकता है । शंभुनाथ ने भारत पर शत्रु देशों की कुदृष्टि की चर्चा के साथ-साथ पाकिस्तान और चीन के आक्रमणों पर भी कविताएं लिखी हैं । मित्रता की आड़ लेकर चीन द्वारा किए गए विश्वासघात ने उनकी मानवतावादी दृष्टि को झकझोर दिया है । आहत राष्ट्रीय भावना के कारण चीन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया काफी तल्ख और तीव्र है । चीनियों की लिपि को बिच्छू की तरह टेढ़ा-मेढ़ा बतला कर, इसे वे कुटिल स्वभाव की प्रतिफलक मानते हैं—

"उन्दे डींग-पडीगे बिच्चू, उन्दे सुभाऽ दी देन गवाई ।"

उनका कथन है कि सर्दियों के बर्फानी मौसम में चीनी नाग

शीत-निद्रा के कारण सीमाओं पर रुका हुआ है और बातचीत की कूटनीति अपना रहा है । जैसे ही ग्रीष्म ऋतु आएगी—यह अजगर अपना फन फैलाएगा । देशवासियों से आग्रह करते हुए वे कहते हैं कि धूर्त की चतुराई को समझना चाहिए । उबाले जा रहे चावलों का एक दाना देखकर चावलों के गलने न गलने का पता चल जाता है । इसलिए हमें पूर्व अनुभवों से पाठ ग्रहण करना चाहिए । उनका कथन है कि भलमानसत का प्रदर्शन करते-करते हम कहीं अपनी स्वतंत्रता न गंवा दें—

"भली-मानसी दसदे-दसदे, ऐमें निं देचै मुल्ख गोआई ।"

विदेशी शक्तियों के अतिरिक्त स्वतंत्रता को पंचमांगी और देशद्रोही शक्तियों से भी खतरा दरपेश रहता है । वे लोग जो दिखावे के लिए हिंदोस्तान ज़िंदाबाद की दुहाई देते नहीं अघाते, किंतु जिन के मन में कुछ और है, ऐसे द्रोहियों से सावधान रहने की आवश्यकता है । संभवतया उनका संकेत उन कश्मीरी नेताओं की ओर है, जिन की दोगली नीति ने भारत को अपार क्षति पहुँचाई है ।

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हमें सांप्रदायिकता, ज़ात-पात, छुआछात जैसे देश की एकता में बाधक सामाजिक रोगों का निदान भी करना होगा ।

देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि आओ प्रण करें कि क्षुद्र स्वार्थों पर लड़ने के बजाय देश के लिए प्राणों का उत्सर्ग करेंगे । कवि मन ऐसे योद्धा सैनिक का गीत सुनने के लिए आकुल है जो जोखिमों में जीता हो, जिसके हृदय में देश और जाति के लिए गौरव हो, पंछी की तरह तेज़-तर्रार हो और बैरी को कैंची की तरह कतरने में आगे रहे । अंततः वह देश के लिए लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हो, किंतु मरकर भी जिसे सब्र न हो । वह देश के सम्मान को बढ़ाए । मृत्यु के बाद संसार उसकी गाथाएं गाता रहे—

"औखें दा भरेआ जीन होऐ, मन देसै जाती दी ईन होऐ ।
तुर्ता-फुर्ता पंछी आंगूं, बैरी कतरै कैंची बांगू ।
लड़दे-भिड़दे गै अमर होऐ, मरिऐ बी निं उसी सबर होऐ ।

देसा दा मान बधाई जा, जग पिच्छूं बारां गाई जा ।"

सैनिक जीवन बलिदान का पर्याय ही है । कृषि के बाद डोगरा लोगों का प्रिय व्यवसाय सेना में सेवा करना रहा है । सैनिक जीवन देश के प्रति समर्पित जीवन है । इन्हीं कारणों से शंभुनाथ ने अपनी कविता में सैनिक को उच्च स्थान प्रदान किया है । "सपाई" शीर्षक कविता में सैनिक के त्याग और बलिदान से देश को प्राप्त होने वाले सम्मान का वर्णन करते हुए कवि उस जननी को धन्य-धन्य कहता है जिसने ऐसे सपूतों को जन्म दिया । वह धूलि भी वंदनीय है जिसमें मृत्यु से किल्लोल करने वाले वीरों का छुटपन बीतता है ।

निष्कर्ष :

इस विवेचन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि अपनी प्रशस्त एवं ओजपूर्ण लेखनी द्वारा उन्होंने मुख्यता देश, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का गुणगान किया है, जबकि क्षेत्रीय भावना की कविताएं जातीय चेतना से अनुप्राणित हैं । इनके द्वारा कवि आस-पास के जीवन के प्रति निष्ठा और प्रतिबद्धता व्यक्त करता है । इस भाव-संपृक्ति के बिंदु से अपनी जन्म-भूमि से जुड़े रहकर कवि राष्ट्रीय चेतना के महायज्ञ में चरु प्रेषित करता है । राष्ट्रीय भावना का काव्य, अंततः 'वसुधेवः कुटुम्बकम' की सूक्ति को सार्थकता प्रदान करता है । राष्ट्रीय भावना देश के चहुँमुखी विकास में एक प्रेरक शक्ति की भूमिका निभा सकती है, इसी विश्वास के साथ शंभुनाथ ने इसे अपनी कविता में अत्यधिक महत्त्व दिया है ।

वैचारिकता का केंद्र-बिंदु—समय

साहित्यकार जिस परिवेश में जीता है अथवा जिस काल-खंड से गुज़रता है, उस के अक्स उसकी वैचारिकता पर जाने-अनजाने में अंकित होते रहते हैं । मूलतः उसकी वैचारिकता के निर्माण में चौगिर्द की परिस्थितियों और सांस्कृतिक परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । यही वैचारिकता उसकी कृतियों में भी प्रतिफलित होती है । शंभुनाथ ने राज-तंत्र का ज़माना देखा था । सामंती मूल्यों को प्रश्रय देती रजवाड़ाशाही में उन्होंने युगों से चली आ रही कुरीतियों को जहाँ निकटता से देखा था, वहीं परंपरागत मूल्यों में निहित मानव-मैत्री और परदुःख कातरता के उच्च आदर्शों को भी साथ-साथ पनपते देखा था । जात-पात, छूत-छात, सांप्रदायिकता आदि के विषैले दंश से पीड़ित समाज के निम्न वर्गों के दुःख भरे जीवन तथा आर्थिक-सामाजिक शोषण को भी उन्होंने करीब से देखा था । वे उच्च सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता के शाश्वत मूल्यों के प्रत्यक्षदर्शी रहे थे । इस दौर में उत्पीड़न, अत्याचार, सामाजिक भेद-भाव के प्रतिगामी मूल्यों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के संसूचक उत्कृष्ट जीवन मूल्य साथ-साथ पलते रहे थे । जम्मू-कश्मीर ऐसी रियासत थी जो भारतीय दृश्यपटल पर उभर रहे परिवर्तनों के प्रति उदासीन थी । लोग तत्कालीन स्थितियों को नियति मान कर जी रहे थे और राजतंत्र के मज़बूत चंगुल में विवशतया आशवस्त थे । यही कारण है कि भारत की आज़ादी, देश विभाजन, कबायली आक्रमण, रजवाड़ाशाही के ध्वंसन तथा रियासत के भारतीय संघ में विलयन आदि के तेज़ घटना-चक्र से रियासती प्रजा का यह परंपरागत आशवस्ति भाव पूर्णतया खंडित हो गया । इसके साथ ही लोगों की बंधी-बंधाई धारणाएं भी टूटने लगीं । स्वतंत्रता के पश्चात् एक नए भारत की छवि उभरने लगी, जिसमें द्रुत विकास

के साथ-साथ अनेक विसंगतियां और सामाजिक विषमताएं स्पष्ट होकर उभरने लगीं ।

शंभुनाथ इस संक्रांतिक दौर के साक्षी रहे थे । शुरु-शुरु में वे परंपरागत सामंती मूल्यों को न केवल सराहते थे, बल्कि मानसिक रूप से राजतंत्र व्यवस्था का एक अंग भी रहे थे । किन्तु भारत पाकिस्तान के मध्य तनातनी का क्षेत्र बन जाने के कारण जम्मू-कश्मीर में जो तीव्र राजनीतिक परिवर्तन हुए थे, उन्हें प्रत्येक चिंतनशील व्यक्ति हतप्रभ-सा देख रहा था । राजनीतिक परिवर्तन से सामाजिक मानदंड भी प्रभावित हुए थे । उत्तरोत्तर प्रत्येक वस्तु का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाने लगा था । फलतः समाज के प्रति दायित्व की भावना सर्वाधिक क्षतिग्रस्त हुई थी ।

शंभुनाथ और उनकी पीढ़ी के लोग जो आज़ादी से पूर्व और आज़ादी के बाद के समय-खंड के मध्य, सेतु की तरह विद्यमान थे— वे अपनी इस स्थिति के कारण परिवर्तनशील घटनाक्रम और मूल्यों की संक्रांति के द्रष्टा बनने को बाध्य थे । तेज़ घटनाक्रम के कारण वे बार-बार इस निष्कर्ष पर आकर ठहर जाते कि परिवर्तन जीवन का नियम है ।

परंतु परिवर्तन सदा ऐतिहासिक, राजनीतिक परिस्थितियों द्वारा प्रेरित होता है—इस विज्ञान सम्मत दृष्टि के विपरीत वे परंपरागत धारणा की पुष्टि करते कि परिवर्तन की डोर सर्वशक्तिमान "समय" के हाथ में है ।

चूंकि उन्होंने कविता लिखना आज़ादी के बाद शुरु किया था, इसलिए सामंती आदर्शों के प्रति आश्वस्ति के भंग होने पर उन्होंने समय के प्रति निजी चिंतन को अपनी विचारणा का केंद्र बना डाला था । उनकी कविता में समय का एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में चित्रण हुआ है । आज़ादी तक वे परिवर्तनों के उस विशाल रेले का अवलोकन कर चुके थे, जिसे उनके पारंपरित संस्कारों ने काल-चक्र मानकर जीवन एवं सृष्टि का एक शक्तिशाली अवयव स्वीकार कर लिया था । इस दौर में शंभुनाथ का प्रगतिवादी विचारधारा से परिचय नहीं था, इसलिए वे इस सांस्कृतिक कालखंड के कारणों को भौतिक

द्वन्द्ववाद के दृष्टिकोण से न देखकर एक आम आदमी की नज़र से देखते, परखते और परिभाषित करते हैं । समय की सामर्थ्य के प्रति वे इतने आश्वस्त हैं कि इसे कवि के जीवन-दर्शन का एक अभिन्न अंग मानना पड़ता है । कविता में अवसर उपस्थित होते ही वे समय की शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने से नहीं चूकते । लगभग प्रत्येक संजीदा कविता में समय का न्यूनाधिक उल्लेख जैसे कवि-धर्म का परमावश्यक अंग बना हुआ है । इस अन्तः साक्ष्य पर यह कहना उपयुक्त होगा कि विषय की दृष्टि से शंभुनाथ की कविता 'समयवादी' कविता है । और वैचारिकता की दृष्टि से वे संक्रांति के कवि हैं ।

समय का वर्णन करते हुए कवि ने जहाँ प्रायः परिवर्तन का समर्थन किया है, वहीं विज्ञान द्वारा निरंतर विनाश के साधनों के निर्माण पर अपनी निराशा व्यक्त की है । समय के प्रति कवि दृष्टि निम्नलिखित उपशीर्षकों में विस्तार पाती है :—

1. समय एक सामर्थ्यशाली इकाई के रूप में
2. समय परिवर्तन के मूल प्रेरक के रूप में
   (क) सराहनीय परिवर्तन
   (ख) विनाशकारी परिवर्तन
3. समय का प्रभाव
   (क) उम्र पर
   (ख) समाज पर
4. व्यतीत का स्मरण
5. धरती पर होने वाले ऋतु परिवर्तन

समय की सामर्थ्य :

समय की विचित्र गति है । यह बिना रुके, गहरी और गंभीर चाल में गतिशील रहता है । इसकी गत्यात्मकता का आदि या अंत किसी को ज्ञात नहीं । यह किसी का लिहाज नहीं करता और अपने नैरंतर्य में दाल-दलिया सब पीसता चलता है । समय के स्वभाव को स्पष्ट करने के लिए कवि ने कहीं-कहीं मानवीकरण अलंकार

का प्रयोग करके इसे सर्वाधिक शक्तिशाली परंतु निर्मम इकाई के रूप में चित्रित किया है, जिसे किसी के सुख-दुःख से कुछ लेन-देन नहीं है । यह अपनी अहम्मन्यता में निमग्न रहता है और किसी का देनदार या मोहताज नहीं ।

'प्रकृति', 'समें दा रंग' तथा 'समें दा गीत' आदि कविताओं में समय के स्वभाव, इच्छा और करणी को लेकर कवि ने अपने विचार प्रकट किए हैं । इन विचारों में यदि गहरे उतरा जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि डोगरांचल में प्रचलित लोक-कथाओं, लोक-गीतों और लोक-गाथाओं में सर्वशक्तिमान विधाता को जो स्थान दिया गया है, कवि शंभुनाथ ने उसी स्थान पर अपनी कविताओं में समय को ला बैठाया है । डोगरी लोक-वार्ता में विधाता को बिद्दमाता (बयमाता), होनी आदि नामों से पुकारा गया है । शंभुनाथ ने समय का जो कार्य वर्णित किया है, उससे अधिकांश स्थानों पर लगता है कि कवि परंपरागत 'होनीवाद' को 'समयवाद' के पहरावे में प्रस्तुत कर रहा है । यथा—"समय अटल है । इसे किसी से प्रीति या वैर नहीं होता । इसके समक्ष राजा और रंक, भोग और वैराग्य एक समान हैं । अटूट लय में गाया जाने वाला यह ऐसा गीत है जिसे किसी साज़ की आवश्यकता नहीं होती ।"

"समय का राग परिवर्तन है । प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ दुनिया बदल रही है । समय का जहाज़ अलक्ष एवं धीमी गति से चलता रहता है । कालचक्र की इसी गति के कारण निरंतर कुछ नया होता जा रहा है । इसी के गर्भ से नया जन्म लेकर पुराने को स्मृति के रूप में सहेजता जाता है । धरती-आकाश ही नहीं, सृष्टि-चक्र में सब कुछ बदलता रहता है । इसीलिए एक कड़ी दूसरी से नहीं जुड़ती । आदमी की अकल सोच-सोचकर हार जाती है । कवि का कथन है—

"केह्ड़ी चीज के ऐ ते बनने दा कारण ।"

कोई वस्तु क्या है और क्यों है । उसके निर्माण का कारण क्या है ?

वह क्षमावान सृष्टि का रचियता कौन है, इस रहस्य का सूत्र

हाथ में नहीं आता । आदमी की क्या बिसात जो इस यथार्थ को समझ पाए, क्योंकि उसका मुंह छोटा है, उम्र की डोर भी छोटी है और अकल का घेरा क्षुद्र है, जबकि समय का अनंत प्रसार है । कवि वस्तुतः हर क्रिया का कारण समय को मानता है । यही कारण है कि प्रत्येक कविता में अवसर उपलब्ध होते ही वह समय के झरोखे में ताक-झांक करने लगता है ।

उपनिवेशवादी दासता और स्वतंत्रता :

समय के संदर्भ में इतिहास के पन्ने उलटाने का उपक्रम भी किया गया है । 'बदलदा समां' का केंद्रीय विचार दृष्टव्य है—

दिन गुज़रते जाते हैं । समय बदलता रहता है । समय के साथ-साथ कार-व्यापार भी परिवर्तित होते हैं । व्यवसाय और धंधे के अनुसार जग अपनी गति बदलता है और यही गति मानव की दशा और दिशा को प्रभावित करती है । एक समय था, जब दूर-दराज़ से शक्तिशाली लोग आकर कमज़ोर लोगों की छाती पर चढ़कर मोर के समान खुशी का नृत्य करते थे । जोंक की तरह गरीब जनता का रक्त पीते और उस पर राज्य करते थे । असहाय भोली प्रजा अपने शोषण में ही सुखी थी । इसी भोलेपन और ग़फ़लत में जब श्वास नली घुटने लगी तब विफलता के बावजूद समय की डोर पर खींचा-तानी बढ़ने लगी । जनता मुक्ति के लिए कसमसा रही थी । लोगों में जागरण की लहर दौड़ गई । उपनिवेशवादी शोषक शक्तियां भी अपने हितों के प्रति सचेत थीं । इसलिए प्रजा और शासकों में टकराव उभरने लगा ।

तब जन-जागरण का दिवस आया और लोक-मानस मुक्ति की आकांक्षा लिए प्रश्न-वाचक नज़रों से दासता की ओर देखने लगा । अत्याचारी शक्तियां अपने अस्त्र-शस्त्र संभालकर जन-जागरण को कुचलने की तैयारी करने लगीं । इसके साथ ही कूटनीति के आश्रय से भारतीय मानस में फूट के बीज बोने के प्रयत्न होने लगे । लालच का बिरवा पलने लगा । शक्कर में विष मिलाकर दिया जाने लगा । इस भाँति वे साँप पालने लगे । यह साँप कोई

और नहीं, वही लोग थे जो भारतीय स्वतंत्रता के विरोधी थे । जिस-जिसने यह विषैला पदार्थ खाया, वह देश से द्रोह करने लगा । देश-द्रोही विदेशी आका के साथ मिलकर देश का बेड़ा डुबोने लगे । परंतु, प्रकृति का नियम है कि क्रिया सदा प्रतिक्रिया को जन्म देती है । जितने ज़्यादा अत्याचार बढ़े और जितने नीच देश-द्रोही सामने आए, प्रतिक्रिया स्वरूप देश की आन-बान, शान के रखवाले उससे कहीं अधिक संख्या में सामने आए । आज़ादी के इन देश प्रेमी परवानों को वैरी चुन-चुनकर मार रहा था ।

नित्य-प्रति के जुल्मों ने देश-भगतों को तीखी सानों पर चढ़ाकर दृढ़ निश्चय प्रदान किए । आज़ादी के ये मतवाले स्वतंत्रता रूपी दुल्हन को ब्याह कर लाने के लिए रणक्षेत्र में कूद पड़े । वे सूली को ब्याह की घोड़ी मानकर हंसते हुए इस पर चढ़ गए । ससुराल वालों ने जो-जो आदर किया (जो-जो कष्ट दिए) इन्होंने हंसकर इन्हें स्वीकार किया (झेला) । जब स्वतंत्रता की घनघोर आवाज़ों से जेलें भर गई, तब ब्रिटिश साम्राज्य की नींवें डोल उठीं और विवश होकर उसे भारत को आज़ाद करना पड़ा । अत्याचारी चौधरी अंततः स्वतंत्रता रूपी अपनी बेटी आज़ादी के दूल्हों से ब्याह कर अपने देश लौटने लगा, क्योंकि, अब उसे लड़की की ससुराल में टिकते हुए शर्म आती थी ।

जाते-जाते उसके हृदय में मलाल-सा भरा था । उसे वे दिन याद थे जब वह जी भरकर इस देश का दोहन करता रहा था । भारतीय रक्त से उसके होंठ तर-बतर थे और हृदय में क्षीण-सी आशा अभी जीवित थी कि शायद जाते-जाते यहाँ शरण मिल जाए । दूसरे यह कि यदि मुंह लटकाए घर लौट गए तो दुनिया में बना-बनाया नाम डूब जाएगा । अंग्रेज़ जाते-जाते ऐसी करनी करना चाहता है कि दुनिया बाद में भी उसका नाम ले, उसकी नीति का लोहा माने । इसलिए उसने दूध पिलाकर पाले हुए देश-द्रोही नागों को प्रेरित किया और मज़हब की आड़ में देश को दो टुकड़ों में बाँट दिया । किसी बीमार व्यक्ति से भूत निकालने से संबद्ध लोक-अनुष्ठान में एक लोक-विश्वास यह प्रचलित है कि

भूत जब निकलने को आता है तो वह जाते-जाते किसी पेड़ की शाखा तोड़कर अपने जाने की निशानी देता जाता है । इसी भाँति उपनिवेशवादी अंग्रेज़ इस देश को तोड़कर अपने जाने की निशानी पीछे छोड़ गया । अंग्रेज़ साज़िश का सादृश्य भूत के रूपक से देकर शंभुनाथ ने इस लोक-विश्वास को समकालीन संगति प्रदान की है । इस विहंगम उपमा के सहारे कवि ने न केवल अंग्रेज़ शरारत का भंडाफोड़ किया है, बल्कि उसकी शोषक वृत्ति की इन्तिहा पर भी रोशनी डाली है ।

बहरहाल, कवि आगे कहता है कि इस षड्यंत्र से किसका भला होता । समय झिंझोड़ा गया । हज़ारों घर जलकर राख में मिल गए, लाखों लोग रक्त की नदी में नहा उठे । चारों ओर मृत्यु का तांडव होने लगा । मानवता के लिए जीना दूभर हो उठा । घर-घर मातम छा गया । धर्म-इमान खोकर मानव हैवान बना शर्म-हया और मर्यादा की सीमाएं तोड़ने लगा । परस्पर प्रेम, भाईचारा और मुलाहिजा विगत की बात हो गया । लूट-पाट, डाकाज़नी और धोखादही को अपना कर लोगों ने हाथ गंदे कर लिए ।"

कवि द्वारा चित्रित यह वस्तु-स्थिति भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की कड़वी सच्चाई रही है । इसी कारण महात्मा गांधी ने कहा था—

"आज़ादी लेने से ज़्यादा मुश्किल उसे संभाल कर रखना है ।"

आज़ाद भारत के सामने उजड़े हुए लोगों के पुनर्वास और विकास का पथ प्रशस्त करने का काम भी था । इसलिए, आज़ादी के साथ समय का दूसरा दौर आरंभ हुआ । मर्माहत देश को देश के कर्णधार अनेक तरह के उपायों से संभालने लगे । महात्मा गाँधी का आदर्श वाक्य उनके समक्ष था कि असफलता, सफलता की राह में एक प्रमुख कड़ी का काम करती है । शंभुनाथ कहते हैं कि यह वह दौर था जब अगणित बेघर-बार लोगों को जगह-जगह बसाया जाने लगा । मरे हुओं का ग़म बिसरा कर उजड़े हुए लोग दुबारा स्थापित हुए ।

"अनेक प्रकार के उद्यमों से बिगड़ी बात को संवारने के जतन

होने लगे । विदेशों से अनाज और अन्य वस्तुएं आयात करके अपेक्षित अकाल को टाला गया । देश को इससे सुख का श्वास आया और दिन गुज़रने लगे । परंतु, वैरी को आराम कहाँ, वह पुनः चारों ओर फंदे फैलाने लगा । अपने घर में बैठे-बैठाए, उसने अपने जाति भाइयों को बहकाया । हींग, मसाला बेचने वाले कबायलियों को एकत्र करके हमारे खुशहाल देश (जम्मू-कश्मीर) पर चढ़ाई कर दी । उन्होंने हत्याओं का बाज़ार गर्म कर दिया और कई तरह के जुल्म ढाने लगे । तब हमारे देश को भी होश आई और अपना-आप संभाला । अब अत्याचारी फरियाद करने लगा । दुष्ट हत्यारे भागने लगे । किंतु, हमारे पाकिस्तानी भाई कुटिल चाल चल ही गए । रियासत का कुछेक भाग, यहाँ के पर्वत-टीले उन्होंने अपने कब्ज़े में ले लिए ।"

"किंतु, भारत की भलमानसत देखें कि इस सब के बावजूद मर्यादा का पल्ला नहीं छोड़ा और सात समुंदर पार यू. एन. ओ. में न्याय की दुहाई दी । परंतु, वहाँ से न्याय की आशा रखना मात्र दुराशा सिद्ध हुआ । आक्रमित और दलित देशों की सहायता के लिए बनी समिति मानो खुदगर्ज़ों की टोली मिल बैठी हो । इसने साधु को चोर करार दिया और चोरों से भागीदारी कर ली । निर्णय के लिए उसने स्वयं मर्यादा और समय निर्धारित कर लिया । बिल्लियों के झगड़े में न्याय की तुला मानो बंदर के हाथ में दे दी गई हो । यह तो जग जाहिर है कि इस समिति ने कितने काम संवारे ।"

इस समिति के पंचों का चरित्र और समिति का प्रयोजन दोनों "रुम्बल" के फल के समान संदिग्ध हैं, जिसके ऊपर आकर्षक लाली होती है, परंतु भीतर कीड़े भरे होते हैं । इस समिति में एक व्यक्ति कोई गए हाँकता है तो उसके दो साथी उसका समर्थन करके गलत बात को पारित करवा लेते हैं । शेष दुनिया चिल्लाती रहती है, मगर इस समिति में तमाम चीखो-पुकार अनसुनी कर दी जाती है । कश्मीर समस्या को लेकर यू. एन. ओ. की गलत भूमिका और शक्ति गुटों की बंदर-बाँट नीति के प्रति शंभुनाथ कटुता से भरे हुए हैं । इसीलिए आगे चलकर वे कहते हैं—"सच है, जब तक

आप के पास शक्ति और दौलत न हो, दुनिया में कोई आपकी दुहाई नहीं सुनता । आज के युग में दुनिया वेश्या की तरह मर्यादा छोड़कर नाचे जा रही है ।

कवि की वैचारिकता के केंद्र में समय के साथ होने वाले परिवर्तन कितनी गहरी छाप अंकित कर चुके हैं—यह उपर्युक्त काव्य-भाव से स्पष्ट है, परंतु, इस कविता की विशेषता यह है कि इस का प्रत्येक पद ऐतिहासिक घटनाक्रम से संबद्ध होते हुए भी, इसमें न तो किसी जाति, नसल, कौम का नाम ही लिया गया है और न ही किसी देश, प्रदेश या प्रांत का । जहाँ तक कि अंग्रेज़, कबायली, यू. एन. ओ., भारत, जम्मू-कश्मीर आदि किसी का भी प्रत्यक्ष नामोल्लेख नहीं किया गया । अप्रत्यक्ष उल्लेख से कविता का सौंदर्य और भी निखर आया है । यदि कवि ऐतिहासिकता से जुड़े इन नामों को कविता में ले आता तो निश्चय ही कविता का सौष्ठव क्षतिग्रस्त हो जाता ।

समय की सार्वकालिक क्षमता और संप्रभुता का परिचय देने के लिए 'समें दे रंग' शीर्षक कविता में मिथकीय पात्रों के नामों का उल्लेख किए बिना उनके शारीरिक बल, आध्यात्मिक शक्ति और सत्यनिष्ठा का वर्णन करके कवि कहता है कि उन जैसे रण-बाँकुरे, ऋषि और सत्यवादी लोगों का आज धरती पर नाम-निशान नहीं रहा । उनका अस्तित्व समय की धूल में मिल गया । भीमसेन जैसे रणवीर योधा जो हाथी को उठाकर आसमान पर फेंक देते थे, या अगस्त्य जैसे तीन अंजुलियों में सात समुद्रों का जल पी जाने वाले ऋषि अथवा सत्य की राह पर अडिग रहने वाले सत्यवादी हरिश्चन्द्र जिन्होंने नीलाम होने पर अपने दास की दासता स्वीकार कर ली—ऐसी महान विभूतियां भी समय के हाथों खिलौना बनी खेलती रहीं । उन सब से ऊपर समय के अमिट अस्तित्व का झंडा लहलहा रहा है ।

परिवर्तन : विकास और विनाश के दो पहलू :

परिवर्तन विकास एवं विनाश दोनों का मूल है । समय के गर्भ

से जन्मा परिवर्तन, विगत के विदा होने और नए के शुभागमन का शंखनाद करता है । किन्हीं परिवर्तनों को कवि जहाँ बार-बार सराहता है वहीं कुछेक के प्रति शंकालू है । सराहना की परिधि में ऐसे परिवर्तन आते हैं जिन में मानवता पर छाए युगों पुराने जात-पात, छूआछात और दासता के अवशेषों से मुक्ति की ध्वनि सुनाई देती है । कवि सामंतवाद के ह्रास को सराहता है और नई उभर रही प्रजातांत्रिक व्यवस्था के सद्गुणों की प्रशंसा करता है । वह अनुभव करता है कि प्रत्येक जीवन मूल्य बदलता जा रहा है । परिवर्तन की तेज़ गति के कारण उसे मति-भ्रम-सा होने लगा है । पुरातन आस्थाओं पर उभर आए संकट के बादल देखकर कवि अचकचा उठता है । एक ओर वह बीते वक्तों का सामाजिक शऊर न रहने से दुःखी है तो दूसरी और जवानी का फख्र महसूस करने वाले युवकों, अपने 'अहं' का सार्वजनिक प्रदर्शन करने वाले लोगों, रूप का अभिमान करने वाली माननियों का अभाव भी उसे साल रहा है । वस्तुतः नए समाज के उदित होने से एक पुराना युग अस्त हुआ जा रहा है । आधुनिक मूल्यों के उभरने से जीवन में स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता चली आई है । आज का मानव किसी यंत्र के पुरज़े की भाँति हो गया है, जिसे संवेदना और भावुकता, सहानुभूतिशीलता और मानवता से विशेष सरोकार नहीं रहा । परिवर्तन के इसी तीव्र झोंके के प्रति कवि असहमति जतलाता है, क्योंकि इसने समाजिक परिदृश्य को आमूल-चूल परिवर्तित कर डाला है ।

परिवर्तन के प्रति कवि के अहसास को तल्खी प्रदान करने में विज्ञान का भी हाथ है । एक ओर विज्ञान ने जहाँ मानवीय विकास की राहें प्रशस्त की हैं, वहीं इसने मानव के अस्तित्व के लिए भी भयंकर खतरा पैदा कर दिया है ।

विज्ञान न केवल युगीन मान्यताओं का तेज़ी से खंडन करता जा रहा है, बल्कि पुरातन और अधुनातन के अंतर को भी रेखांकित करता जा रहा है । विनाशकारी शस्त्रों का उत्पादन करके विज्ञान जैसे मानवता को आत्मघात के साधन सुलभ कराता जा रहा है । रासायनिक और परमाणु शस्त्रों एवं युद्ध की नवीन प्रणालियों

से वीरता की परंपरागत परिभाषाएं कुंठित हो उठी हैं । एक परमाणु बम के चल जाने से मानव जाति का नाम-निशान मिट जाएगा । पहले योद्धा छाती तानकर हाथ में तलवार और ढाल थामें शत्रु से लोहा लेते थे । किंतु, अब खंदक में छिपकर तोपों-बंदूकों के बलबूते युद्ध करते हैं । युद्धक विमानों द्वारा धरती पर विनाशकारी बम गिराए जाते हैं । कवि इस बात की कड़ी आलोचना करता है कि पुरातन प्रतिमानों के अनुसार वीरता लुप्त हो गई है । उसके कथनानुसार कायरता को वीरता के परिधान में प्रस्तुत किया जा रहा है । विज्ञान के इस विनाशकारी स्वरूप का अवलोकन करने पर मृत्यु के नए-नए साधनों का निर्माता मानव जब धीर-बुद्धि से इस खेल पर विचार करता है तो स्वयं का बिछाया मृत्यु का जाल देखकर त्रस्त हो उठता है ।

वैज्ञानिक विकास को किसी एक सीमा पर रुकते न देखकर कवि पुनः 'समयवादी' दर्शन की शरण में जाता है और इस निर्णय पर पहुँचता है कि समय ही मानव को दिग्भ्रमित कर रहा है । धरती से ऊबकर मानव अंतरिक्ष में चला जा रहा है । वहाँ तारों की खोज करके जाने क्या करेगा ? अपने प्रश्न का स्वयं ही व्यंग्य में उत्तर देते हुए कवि कहता है कि क्या मालुम वहाँ से भगवान को पकड़ कर ले आए । अब मानव का हौसला इतना बुलंद हो चुका है कि वह किसी बात से संकोच नहीं करेगा । संभव है, अंतरिक्ष में वह नई दुनिया बसा डाले । या फिर चाँद-तारों पर उतर कर मृत्यु की पकड़ से दूर हो ले । अपनी गति और दिशा बदल कर वह किस ओर चला जा रहा है—इसकी थाह कोई नहीं पा सकता ।

शंभुनाथ परिवर्तनों के प्रति चकित भी हैं और शंकालू भी । परंतु, दलित वर्गों को मिलने वाले सम्मान और समानता के वे कट्टर समर्थक हैं । विज्ञान के प्रति उनका दृष्टिकोण मानवतावादी दृष्टि से उचित है । जैसे कि विनाशक शस्त्रों के उत्पादन की दिशाहीन दौड़ की आलोचना बिलकुल जायज़ और सामयिक है । परंतु, अंतरिक्ष और खगोल शास्त्र की दिशा में मानव की ज्ञान-पिपासा और वैज्ञानिक

प्रयत्नों के प्रति दृष्टिकोण प्रतिक्रियात्मक है । यह संभवतया इसलिए है क्योंकि कवि-मानस सामंती जीवन दृष्टि से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया । उसके समक्ष विज्ञान का इस दिशा में बढ़ना मानव की नियत सीमाओं का अतिक्रमण है । 'जुग बदलोंदा जा करदा' नामक एक कविता में वह अपने दिग्भ्रम को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । कवि मानस ने भारतीय उपमहाद्वीप पर होने वाले प्रत्यक्ष राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवर्तनों से तो समझौता कर लिया है, किंतु विज्ञान द्वारा मानवता के आत्मघात के लिए आविष्कृत नई विधियों और अंतरिक्ष में दुस्साहस को लेकर वह अपने को असहमति के द्वार पर ला खड़ा करता है । कवि वस्तुतः इस आशंका से ग्रस्त है कि कहीं अंतरिक्ष से छेड़-छाड़ करके मानव संपूर्ण मानव जाति के लिए कोई नई मुसीबत न खड़ी कर दे । कवि चाहता है कि आदमी अंतरिक्ष के बजाय धरती की सुध ले, इसे स्वर्ग के समान बनाए । धरती पर जब अनेकानेक समस्याएं मौजूद हैं तो चाँद-तारों की ओर आदमी की बेतहाशा दौड़ क्योंकर सार्थक कहला सकती है ।

"लड़ै दे चु'ल्ली पर, फिकर तारें-चन्नें दे ।"

धरती पर देश और सीमा के प्रश्नों को लेकर आदमी मर-कट रहा है । तब भला चाँद और तारों की फ़िक्र किसलिए ?

धरती पर जिन समस्याओं का समाधान ढूँढने की अज़हद ज़रूरत है, उनमें दूसरों के अधिकारों को छीनने की लत, राकेट और अणुबम बनाकर एक दूसरे पर धौंस जमा रहे देश, गुटों में बंटी दुनिया की परस्पर अविश्वास की दुहाई, सांप्रदायिकता और कपटी नेताओं के षड्यंत्र प्रमुख हैं । ऐसी दशा में अंतरिक्ष की लालसा न तो उचित है और न फिलहाल वांछित ही है । इस समय यदि आवश्यकता है तो द्वैत का पर्दा हटाने की । द्वैत से कवि का तात्पर्य भेदवादी दृष्टि और महाशक्तियों के खेमों में बंटी मानवता से है । यह द्वैतवाद मिटाकर और देश-प्रांत की सीमाओं के संकुचित घेरे तोड़कर जब यह संसार मानवता का सांझा घर बनेगा तभी यह धरती रहने योग्य बन पाएगी ।

जीवन और समय का कटु यथार्थ :

समय न केवल सांसारिक घटना-क्रम को प्रभावित करता है, प्रत्युत् मानव जीवन पर भी इसकी अमिट छाप पड़ती है । जन्म के बाद बच्चा दिन-दिन बढ़ने लगता है । नवजात शिशु की आँखों के आँसू भी थमे नहीं होते कि मौत फेरे मारने लगती है । समय तेज़ी से बीत जाता है । बच्चा जवान होता है, फिर बुढ़ापा चला आता है । आज कल में, कल परसों में बदल जाता है । अंततः मृत्यु में परिणति होती है । समय के इस भाव और प्रभाव को लेकर भी शंभुनाथ ने बहुत-सी कविताओं में अपने दृष्टिकोण को दुहराया है । 'आजू ऐ थोड़ी ते कम्म बत्तेरे' नामक कविता में परिवर्तन-शीलता के इस पुरातन भाव को प्रस्तुत किया गया है । बचपन में आदमी कल्पना लोक में विचरण करता है कि बड़ा होकर ऐसा करूंगा वैसा करूंगा । संसार मेरा यशगान करेगा । परंतु, जवानी पलक झपकते बीत जाती है । आयु का दरिया किसी के रोके नहीं रुकता । तब बुढ़ापा चला आता है । आदमी अपने को कमज़ोर अनुभव करने लगता है । अगले पड़ाव की सोचकर घबराता है । उसे अपनी भूल याद आने लगती है कि जीवन में कभी किसी का भला नहीं किया और अब जब कि मृत्यु ने घेर लिया है क्या किया जाए ।

कवि का मानना है कि चार दिन की ज़िंदगी में कुछ कर दिखाने का समय जवानी का ही होता है । तब मानव केवल रूप-सौंदर्य की चिंता करता है और अपने -आप पर इतराता है । "पत्तन" शीर्षक कविता में कवि जवानी और बुढ़ापे के मिलन का एक अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत करता है और इसके द्वारा जीवन के कटु यथार्थ को स्पष्ट करता है । यौवन के निखार में इठलाती एक रूपसी घर से घड़ा लेकर पानी लाने नदी किनारे जाती है । वहाँ अपनी अल्हड़ जवानी के आवेग और बांकपन से आत्म-मग्न वह जल में अपना प्रतिबिंब निहार कर आत्म-मुग्ध हो उठती है । वहीं खद्दर की चद्दर लपेटे और हाथ में छड़ी थामे, पीले झुर्रीदार चेहरे और कांपती गर्दन वाली

बुढ़िया एक ओर खड़ी न जाने कब से उसे निहार रही थी । नवयौवना की जल-क्रीड़ा देखकर उसकी स्मृति के तार झनझना उठे । व्यतीत हो चुके समय के स्मरण से आँखो से दो आँसू उतर आए । सहसा नवयौवना की निगाह उस पर पड़ी तो वह भौंचक रह गई । हड़बड़ा कर अपने घड़े को उठाने लगी । बुढ़िया से रहा न गया । वह नवयौवना के समक्ष अपने को अपराधी अनुभव करते हुए बोली— तू खेलती रह । तेरे खेलने के दिन हैं । कभी मैं भी जवान थी और तेरी तरह किल्लोल किया करती थी । खेल-खेल में मैं अपना-आप भूल जाया करती थी । किसी दिन बुढ़ापा घेर लेगा ऐसा कभी न सोचा था । काम-धंधे में उम्र बीत गई । अचानक समय ने चेहरे पर थप्पड़ मारा, जीवन एक जंजाल बन गया । तुझे देखकर मुझे अपने दिन याद हो आए । जवानी की ऋतु कैसी सुहावनी होती है, मगर यह लौटकर नहीं आती । तुझे देखकर मुझे प्रभु की अद्‌भुत लीला का स्मरण हो आया कि बीता हुआ समय कभी नहीं लौटता ।

इस तुलना द्वारा स्पष्ट हुए यथार्थ की बात जानकर अल्हड़ नवयौवना स्तब्ध रह जाती है । इस रूप, सौंदर्य और जवानी की ऐसी घिनावनी परिणति की बात जानकर उसने लंबी, साँस छोड़ी और घर को लौट आई ।

'कड़ी' नामक कविता में पाँव के ज़ेवर कड़ी को आधार बनाकर निरंतर बीत रही जवानी और समय की बात कही गई है । इसलिए, कवि जवानी को संभाल कर इस्तेमाल करने का उपदेश देता है । ताल-बेताल नाचता हुआ मानव कदम-कदम मृत्यु की ओर बढ़ता रहता है । अंततः यह उसके सिर पर नाचती दिखाई देती है ।

ऋतुचक्र, प्रकृति और स्मृति :

परिवर्तन के संदर्भ में प्रकृति तथा ऋतुयों के वर्णन द्वारा इन्हें जन्म, मृत्यु आदि के सादृश्य से वर्णित किया गया है । परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव मानव समाज पर पड़ता है । वैयक्तिक प्रभाव से समष्टिगत प्रभाव का निर्माण होता है । इसीलिए कवि का कथन है कि इस युग में भूखे-नंगों को आश्रय मिल रहा है । सामंतशाही

के ह्रास से एक नया समाज उभर रहा है—

"अब नहीं रहा समय पुराना,
जनता का है राज, नया जमाना ।
तान कर छाती भर हुँकार,
सुनता नहीं कोई दबी पुकार ।"

अन्यत्र परिवर्तन के प्रभाव का वर्णन इस तरह किया गया है कि नव युग का गुणानुवाद दिखाई देता है । कवि का विश्वास है कि नये युग में जात-कुजात का अन्तर नहीं होगा । मानवता ही मूल धर्म होगी । मत-मतांतर के भेद नहीं होंगे । जो मेहनत करेगा वह श्रम का फल पाएगा । नए युग में वही सफल रहेगा जो जाग्रत होगा और समय के स्वर को पहचानेगा ।

स्मृति का संबंध समय से है । इसलिए स्मरण-वृत्ति की कविताओं को भी समय के अन्तर्गत रखना उचित लगता है । 'चेत्ते' कविता में शंभुनाथ ने चाँद विषयक विश्वासों की पृष्ठभूमि में अपने अतीत को जीवित किया है । इस कविता में बालोचित मानसिक सरलता और भाषायी सादगी का अनुपम दृश्य प्रस्तुत हुआ है । इसी भाँति 'चेत्ता' कविता में भी स्मृति के विषय में कवि के उद्‌गार अति प्रभावशाली हैं—

"मुड़ी-मुड़ी रोलै बचपन ते जोआनी ।
तोल्लै सारी चंगी-माड़ी कीती मनमानी ।
सारा जीन छीट-जन अग्गें बिछी जा ।
बाइस्कोप अक्खिएं दे ओहुल्लै खिची जा ।"

स्मृति बार-बार बचपन और जवानी के पृष्ठ पलटती है । इस उपकरण द्वारा व्यक्ति अपने बुरे-भले का मूल्यांकन करता है । स्मृति के झरोखे से सारा जीवन एक छीट की तरह सामने बिछ जाता है । आँखों के सामने अपने जीवन की दृश्यावली बाइस्कोप के चित्र की तरह स्पष्ट हो उठती है ।

स्मृति मोह के कारण, कवि प्राचीन के उस सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य के प्रति भी अपनी संवेदना और पसंद व्यक्त करता है जिसे परिवर्तन के प्रबल थपेड़ों ने पूर्णतया विगत के धूलि पूरित बवंडर में फेंक दिया है । 'जुग बदलोंदा जा करदा' के एक

पद का भावार्थ यों है—

"शूरवीर इन्सान न रहे ।
वे बाँके अकड़-खान न रहे ।
न रूप रहे, न मान रहे ।
न रूआब रहे, न गुमान रहे ।"

बालपन से व्यक्ति जिस परिवेश में जिया हो, जवानी की ढलान पर उसके परिवर्तित हो जाने पर वह अपने संदर्भों से कट जाता है । परिवेश से कटाव की यही पीड़ा कवि मानस को लगातार कुरेदती रही है । नए सांस्कृतिक मूल्य उसे अटपटे और अपरिचित लगने लगते हैं । बाध्य होकर वह स्मृतिजीवी हो जाता है ।

परिवर्तन के निरंतर गतिमान चक्र की बात कवि, प्रकृति में ऋतु चक्र के सादृश्य से भी करता है । उसका कथन है कि जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु स्थिर नहीं हैं और यह प्रकृति के नियम में बंधे हुए हैं, उसी तरह बदलती ऋतुएं भी परिवर्तन का निरंतर उद्घोष करती रहती हैं । दिन-रात भी इसी नियम में बंधे हुए हैं ।

इस चर्चा से स्पष्ट है कि परिवर्तन की बात कवि ने निम्नलिखित कोणों से की है :—

1. निज जीवन पर परिवर्तन का प्रभाव

"साढ़े लेई ते समां जद कदें बदलेआ ।
पैहुला चंगा हा जेहुड़ा जदूं बदलेआ ।"

2. मानव समाज पर परिवर्तन का प्रभाव

"दिन-दिन जंदा, समां बदलदा, समें दे कन्ने धंदे ।
धंदे नै जग चाल बदलदा, चाल्ला कन्ने बंदे ।"

3. प्रकृति के माध्यम से परिवर्तन की अभिव्यक्ति

"ब्हार ते आई पर आई नि पूरी ।
समां ऐ झक्कै दा, दिक्खै दा घूरी ।"

अतएव शंभुनाथ को परिवर्तन का चितेरा कहना सर्वथा उपयुक्त लगता है ।

डोगरी रामायण

विश्व की प्रत्येक प्राचीन संस्कृति में परंपरा के ऐसे मूल्यवान सूत्र विद्यमान रहते हैं जो सार्वभौमिक यथार्थ से अनुस्यूत होने के कारण शताब्दियों तक प्रासंगिक और जीवंत बने रहते हैं । राम-कथा भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धारा में एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण अंतर्सूत्र है । भारतीय जन-मानस युग-युगांतर से इससे अजस्र प्रेरणा पाता आया है । साधारण जन के लिए जीवन का असाधारण आदर्श संजोए हुए यह कथा प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कवियों के आकर्षण का केन्द्र रही है । यही कारण है आधुनिक युग में भी कवियों ने अपने सामर्थ्य की परख हेतु राम-कथा से संबद्ध, विषयों पर कलम चलाई है । हिंदी में 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) तथा डोगरी में 'बेद्दन धरती दी' (प्रकाश प्रेमी) इसी तरह के सद्-प्रयास हैं ।

राम-कथा भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की ऐसी अनुपम एवं अनूठी दाय है जिस में जीवन अपने तमाम सूक्ष्म एवं स्थूल रंगों एवं भेदोपभेदों सहित प्रतिफलित हो रहा है । महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' में परिवार एवं समाज से संबंधित, नैतिक मूल्यों एवं बौद्धिकता-भावुकता आदि का लोक-हितकारी स्वरूप, विभिन्न पात्रों का व्यवहार एवं चित्रण भारतीय जनमानस के लिए आदर्श संस्थापक तथा अनुभव उन्नायक सिद्ध हुआ है । इस महाकाव्य का सामाजिक सरोकार इतना प्रबल है कि प्रगतिवादी आलोचक भी मानते हैं कि 'रामचरित मानस' से यदि हम उन बातों को निकाल दे जो वैज्ञानिक मन के अनुकूल नहीं हैं तो बहुत-सी बातें उसके बावजूद भी ऐसी शेष रह जाती हैं जिनसे आज की ज़िन्दगी में हम प्रेरणा ले सकते हैं ।

राम-कथा में कवि कौशल की कितनी गुंजायश है, इसका अनुभव कृत्तिवास की बंगला रामायण से सहज ही हो जाता है, जिसका

मात्र एक कांड—'लंका कांड' ही संपूर्ण 'रामचरित मानस' से बड़ा है । इसी भाँति उड़िया, तमिल तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रणीत रामायणें भी बुद्धि, कल्पना तथा भावना के समुच्चय द्वारा काव्य-कौशल के प्रतिमान बनी हुयी हैं । सर्वत्र राम-कथा की सरसता द्वारा जीवन के गहन तत्त्व को विश्लेषित करके सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना की गई है । इसलिए भारतीय संस्कृति, लोक-धर्म, व्यवहार, सदाचार, त्याग-वैराग्य आदि को प्रतिपादित करने हेतु बहुत से कवियों ने इस कथा का आश्रय लिया है । तुलसीदास के रामचरित मानस ने न केवल हिंदी भाषी क्षेत्र में ही इन आदर्शों को प्रचारित-प्रसारित किया है, प्रत्युत् समूचे भारत, किंवा सारे विश्व में भारतीय जीवन-शैली और विचारधारा को प्रस्तुत किया है । इस विचारधारा एवं जीवन शैली का केन्द्रीय विचार समन्वय, सहिष्णुता, त्याग, धैर्य एवं वीरता के उच्च आदर्श हैं ।

बहुत से कवियों ने राम-कथा की इसी अजस्र प्रेरणा के वशीभूत विभिन्न भारतीय भाषाओं में राम-कथा के मनोरम कथानक को काव्यात्मक परिधान पहनाया है । इसमें सन्देह नहीं कि राम-कथा का मूल स्रोत बाल्मीकि रामायण रही है, परंतु कवियों ने कल्पना तथा भावना का आश्रय लेकर अपनी काव्यानुभूति को युगानुरूप संगति प्रदान की है । प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के अतिरिक्त भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में इस कथानक को लेकर अनेक प्रबंध काव्य रचे गए हैं ।

जम्मू क्षेत्र में राम भक्ति परंपरा बहुत पुरानी नहीं है तो भी महाराजा गुलाब सिंह द्वारा डोगरा राज की स्थापना के साथ राम लीला और राम-कथा के साथ-साथ डोगरा क्षेत्र में राम मंदिरों के निर्माण को बढ़ावा मिला । जनमानस में प्रचलित 'ढोलरू' गीतों में राम-कथा के कुछेक अंश अवश्य ही विद्यमान हैं, परंतु यह मानने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि राम-कथा की जड़ें डोगरा जनपद में काफी विलंब से पनपी हैं ।

इस भावना के वशीभूत कि और बहुत-सी भाषाओं में राम-कथा पर प्रचुर साहित्य विद्यमान है, केवल डोगरी भाषा इससे रिक्त रही

है—डोगरी भाषा के हितैषियों की हार्दिक इच्छा थी कि डोगरी में रामायण की रचना होनी चाहिए । शंभुनाथ ने लंबी इतिवृत्तात्मक कविताएं लिखकर साहित्यकार मित्रों को भली-भाँति इस बात का अहसास करा दिया था कि प्रबंध काव्य की रचना करने की उनमें क्षमता भी है और प्रतिभा भी । उन्हीं मित्रों की प्रेरणावश शंभुनाथ ने रामायण की रचना का संकल्प किया । कवि के अपने शब्दों में—"अग्रणी साहित्यकारों ने सुझाव दिया कि मैं अधेड़ उम्र का व्यक्ति हूँ, मेरे लिए समय भी कम है । हो सके तो अपनी टूटी-फूटी कविता में रामायण की रचना का प्रयत्न करूं ।"

शंभुनाथ विनम्रतावश अपना मूल्य कम करके आंकते थे । गर्वोक्ति उनके स्वभाव में न थी । चेहरे पर सदा खिली रहने वाली मुस्कान उनकी विनय-शीलता का साक्ष्य प्रस्तुत करती थी । अपनी कमज़ोरियां भी वे छिपाते न थे । अतएव जब रामायण लिखने का प्रश्न प्रस्तुत हुआ तो इस अनूठे काम के प्रति उमड़े उत्साहवश हामी तो भर बैठे, परंतु इस महत्त्वाकांक्षा के आकाश की जब थाह ली तो लगा यह काम उनके वश का नहीं । विचार-विमर्श, मनन-अनुशीलन से राह सूझने लगी । उनके अपने शब्दों में—"अन्ततः वह स्वामी जिसने मेरे साथियों के हृदय में ऐसी प्रेरणा के बीज उगाए थे, वही मेरा सहायी हुआ ।"

रामायण लिखते समय एक लक्ष्य सदा उनके समक्ष रहा कि इसकी संरचना यथार्थ पर हो । इतिहास अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाए । डोगरी रामायण की रचना के प्रयोजन पर विचार करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :—

1. डोगरी भाषा जिसमें 1960 ई. तक एक भी प्रबंध काव्य नहीं था, उसे डोगरी का प्रथम महाकाव्य देने की बलवती लालसा ने कवि को इस दिशा में प्रवृत्त किया । दूसरे अर्थों में यह प्रेरक शक्ति उनका भाषा प्रेम था ।

2. अग्रणी साहित्यकारों का आग्रह कि अपनी प्रतिभाशाली लेखनी से रामायण की रचना करके वे न केवल अपनी ढलती उम्र का सदुपयोग कर पाएंगे बल्कि उनकी शैली और भाषायी सामर्थ्य को

भी उपयुक्त विषय और वस्तु मिलेगी ।

3. व्यक्तिगत जीवन में वे प्रायः कहा करते कि कलियुग में राम नाम एक महिमामय महामंत्र है । विश्व के तमाम मंत्र इसी में समहित हैं । यही कारण है कि आम हिन्दू जब कभी किसी विपत्ति से दो-चार होता है, वह राम की शरण में जाता है । संभवतया इसी धारणा के वशीभूत निजी जीवन के कष्टों और कठिनाइयों का कहीं आर-पार न पाकर वे राम-कथा की शरण ढूँढते हैं । जैसे धनवान व्यक्ति परलोक में सुख की कामना से इह लोक में कुएं और बावलियां बनवाता है अथवा मंदिर का निर्माण करवाता है, वैसे ही परंपरानुगामी विद्वान लोग धनाभाव की स्थिति में शब्द संपदा की ईंटों और श्रद्धा एवं भावना के सुर्खी-चूने से ईश्वर महिमा का बखान करते हैं । शंभुनाथ द्वारा डोगरी रामायण का निर्माण राम कृपा के राह खर्च के तौर पर किया गया लगता है । अपनी अकारथ बीती जा रही उम्र और अधेड़ होने का अहसास उन्हें परलोक की चिंता से ग्रस्त किए हुए हैं ।

शंभुनाथ विरचित रामायण का मूलाधार तुलसीदास का रामचरित मानस है । पुस्तक की भूमिका में वे बाल्मीकीय आद्य रामायण के अध्ययन की बात भी कहते हैं—"हो सके तो आधार बाल्मीकि जी का होना चाहिए, क्योंकि वे आदि कवि हैं और उन्हीं की रामायण प्रामाणिक मानी जाती है । परंतु विगत चार सदियों से गोस्वामी तुलसीदास की रचना ने भी जनता-जनार्दन को काफी प्रभावित किया है । इसलिए दोनों का भली-भाँति अध्ययन-विश्लेषण करके अपना कार्य आरंभ करें.....।"

इस स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है कि शंभुनाथ की रामायण का मूलाधार बाल्मीकि और तुलसी की रचनाएं हैं । इसके अतिरिक्त बचपन से लेकर युवावस्था तक वे रामलीला में भी नियमित भाग लेते रहे थे । इस जुड़ाव के कारण भी राम-कथा को सरलता से हृदयंगम करने में उनके कवि मन को कोई कठिनाई पेश न आई । डोगरी रामायण की रचना में सरल, सुबोध एवं सुपाच्य भाषा का प्रयोग किया गया है । इसमें दुरूह काव्य प्रयोग, दार्शनिक प्रसंग

तथा भावातिरेक का कहीं कोई चिन्ह तक दृष्टिगोचर नहीं होता । उनका एक मात्र ध्येय रामचरित द्वारा ब्रह्म के सगुण एवं दुष्ट-दलन रूप को उद्घाटित-प्रकाशित करना है ताकि रामचरित डोगरा जनमानस में गहरे पैठ सके ।

डोगरी रामायण का मुख्य ढाँचा 'रामचरित मानस' पर आधारित है । इस प्रसिद्ध ग्रंथ से विभिन्न भाव, विचार तथा कथा-प्रसंग उठाकर उनका पद्यानुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है । मानस में राम-कथा के वर्णन तथा महत्त्व प्रकाशन के लिए शिव तथा उमा संवाद, नारद तथा सनक आदि मुनियों का वार्तालाप और गरुड़-काक भुशुंडि के मध्य राम-चरित एवं धर्म चर्चा को आधार बनाया गया है । शंभुनाथ ने इस रोचक शैली का निषेध करके मानस की दोहा एवं चौपाइयों का साधरण छंद में अनुवाद किया है । इन पौराणिक पात्रों द्वारा तुलसीदास ने काल, जीवन, कलियुग तथा प्रभु विषयक अनेक तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया है, किन्तु शंभुनाथ राम-कथा के इन महत्त्वपूर्ण पात्रों का स्पर्श इस दृष्टि से कदापि नहीं करते । कथानक के लिए मुख्यतः तुलसी पर आश्रित होते हुए भी शंभुनाथ ने 'राम चरित मानस' के कथा-सूत्रों की मौलिकता बनाए रखी है । सादगी के आग्रह के कारण शंभुनाथ तुलसीदास की अनेक भाव-भीनी चौपाइयों एवं दोहों को छोड़ गए हैं । इससे शंभुनाथ की रामायण रूक्ष, इतिवृत्तात्मक तथा लोक-कथा की भाँति तीव्र गति से उत्कर्ष और फिर अन्त की ओर बढ़ने वाली बन गई है । प्रकटतः डोगरी रामायण बहुधा घटनाओं का संग्रह दिखाई देती है । परिवर्तन-परिवर्धन का स्वरूप ऐसा है कि मानस का कथा-बीज धारण करते हुए भी घटनाओं का क्रम बाल्मीकीय रामायण के अनुसार रखा गया है । उदाहरणार्थ—मानस में धनुर्भंग प्रसंग के उपरांत भृगुनंदन परशुराम एवं लक्ष्मण का वार्तालाप दर्शाया गया है, जबकि बाल्मीकि ने इसे बारात की अयोध्या वापसी के समय समायोजित किया है । शंभुनाथ ने परशुराम प्रसंग तथा अन्य प्रसंगों को बाल्मीकि के क्रम में प्रस्तुत किया है ।

अनुवाद का मूलाधार अवधी भाषा की दोहा-चौपाई न होकर,

उसकी हिंदी व्याख्या है । यथा–

दोहा–हरषित गुरु परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ।

डोगरी में वर्णित कथा-सूत्र है–

गुरु वसिष्ट, कटुम्बी, ब्राह्मण, शत्रुघनै समेत ।
चले भरत जी प्रेम रंगोए दे, प्रभु गी लैने हेत ।

इस अवधी दोहे का अर्थ गीता प्रेस गोरखपुर के संस्करण में इस तरह स्पष्ट किया गया है-"गुरु वसिष्ठ जी, कुटुम्बी छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरत जी अत्यन्त प्रेम पूर्ण मन से कृपाधाम श्री राम जी के सामने (अर्थात् उनकी अगवानी के लिए) चले ।"

यदि इस व्याख्या की डोगरी पद से तुलना करें तो यह तथ्य स्पष्ट होगा कि रामायण के पद्यानुवाद के लिए मुख्यतः हिंदी व्याख्या का आश्रय लिया गया है । अन्यत्र कहीं अवधी के तुकांत शब्दों को डोगरी में भी इसी प्रयोजन से ले लिया गया है । किंतु यह बात स्पष्ट है कि ऐसा उसी स्थिति में किया गया है जहाँ अवधी या हिंदी तुकांत शब्द उसी अर्थ में डोगरी में भी प्रचलित हों । कई बार चौपाई की किसी पंक्ति का अर्थ अनूदित पद में न समा पाने की स्थिति में उसे अगले पद में समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

रामायण में वाग्वैदग्ध्य का प्रदर्शन करने में शंभुनाथ की कलम बंधी-बंधी-सी रही है । इसका एक कारण तो यह है कि वे प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता की स्वकल्पित धारणा में बंधकर तुलसी विरचित मानस की सीमा के भीतर ही रहे हैं । मानस को उन्होंने राम-कथा की मर्यादा मान कर कहीं भी इसका उल्लंघन नहीं किया । बाल्मीकि रामायण से संकलित कतिपय कथासूत्रों के अतिरिक्त इसमें अधिक परिवर्तन-परिवर्धन भी दृष्टिगोचर नहीं होता । मुख्य कथा को पकड़े हुए वे आवश्यकतानुसार बाल्मीकि रामायण के प्रसंग अथवा भाव इसमें संगुफित कर देते हैं । परंतु ऐसा बहुत कम हुआ है । इसमें संदेह नहीं कि उपर्युक्त दोनों

महाकाव्यों का अद्भुत गंगा-जमुनी संगम डोगरी रामायण प्रस्तुत करती है । कथा सामग्री के संयोजन, प्रस्तुतिकरण तथा छंद सारल्य के कारण डोगरी रामायण एक विशिष्ट कृति के दर्जे पर पहुँच जाती है ।

रामचरित मानस जैसी अमर काव्य कृति से शंभुनाथ या किसी अन्य कृत रामायण की तुलना संभवतया अनुचित जान पड़ती है, क्योंकि एक सघन बदली की तुलना अतल गंभीर सरोवर से करना प्रासंगिक नहीं लगता । परंतु चूंकि शंभुनाथ की रामायण मूलतः और मुख्यतः 'मानस' पर टिकी हुई है, इसलिए इसके मूल्यांकन के लिए तुलना आवश्यक हो जाती है । और यह एक तथ्य है कि अपनी शैली एवं सरलता के कारण 'रामचरित मानस' जिस तीव्रता से भारत के राम स्नेही समाज में समादृत हुआ है वैसा श्रेय प्रखर अभिव्यक्ति के बावजूद डोगरी रामायण को फिलहाल नहीं मिल पाया ।

तुलसीदास मूलतः भक्त कवि हैं । इसलिए उनमें धार्मिक भावना की प्रबलता है, जबकि शंभुनाथ आस्था रखते हुए भी मूलतः एक साहित्यकार हैं । मातृ भाषा के प्रति अतीव स्नेह का प्रकटीकरण वे प्रबंध काव्य लिखकर करना चाहते थे । और जैसा कि ज़िक्र आया राम-कथा युगों से क्षमतावान कवियों के लिए उत्साहवर्धक प्रेरणा बनती रही है । इसलिए शंभुनाथ की क्षमता एवं वांछा के अनुसार एक मात्र राम-कथा ही योग्य विषय बन पाई । डोगरी रामायण के प्रणयन की प्रविधि में शंभुनाथ ने मुख्य कथा के लिए तुलसी का अनुगमन करते हुए भी कहीं एक श्रद्धावान भक्त के से उद्गार प्रकट नहीं किए, बल्कि एक इतिहासकार की तरह इतिवृत्त बयान करते चले गए । इतना ही नहीं तुलसी के राम जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं, वहीं शंभुनाथ ने कहीं-कहीं राम को बाल्मीकि की दृष्टि से चित्रित किया है । राम बहुधा एक मानव, राजा, पुत्र, पति तथा वीर-धीर योद्धा के रूप में चित्रित किए गए हैं । बाल्मीकि रामायण से कुछेक कथा-सूत्र और चरित्रों का प्रारूप लेकर उन्हें मानस की चयनित सरंचना पर ढाला गया है । दोनों के विचित्र संश्लेषण से डोगरी रामायण में एक नवीनता चली आई है ।

तुलसी का रामचरित मानस निगम-आगम सम्मत है । मानस की रचना से पूर्व उन्होंने न केवल बाल्मीकि रामायण, पुराण आदि का गंभीर अध्ययन कर रखा था, बल्कि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में रचित राम विषयक साहित्य का अवगाहन भी किया हुआ था । शंभुनाथ मात्र आदि रामायण और मानस का अध्ययन करके इस कार्य में प्रवृत्त हुए ।

मानस में तुलसीदास यथावसर प्रथम पुरुष मे टिप्पणी करने लगते हैं और मानस के संपूर्ण कथा-क्रम में आदि से अन्त तक जुड़े रहते हैं । बनवास के उपरांत राम के अयोध्या लौट आने पर भरत से मिलाप की अद्‌भुत छटा और भावात्मक वातावरण के वर्णन में अपनी कवित्व शक्ति को कुंठित अनुभव करते हुए वे कहते हैं—"प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहि जाति नहिं उपमा कही ।"

शंभुनाथ मंगलाचरण के रूप में प्रस्तावित वंदना में प्रथम पुरुष में निवेदन करने के उपरांत प्रायः तमाम राम-कथा में निरपेक्ष रहे हैं । इससे स्पष्ट है कि शंभुनाथ ने कथा वर्णन की एक निश्चित शैली का निर्धारण करके अंत तक उसका अनुसरण किया है । यही कारण है कि मानस में वर्णित भावुक एवं हृदयकारी स्थल जिनमें कि तुलसीदास अपने साहित्यिक उत्कर्ष का सफल प्रदर्शन कर पाए हैं, को शंभुनाथ छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं । उदाहरण के लिए, विरह की अग्नि में वर्षों दग्ध रहे परिजनों एवं पुरवासियों के हर्षित-पुलकित होने का वर्णन और उनके शोक निवारण के लिए राम द्वारा असंख्य रूपों में प्रकट होकर दर्शन देने के प्रसंग का उन्होंने परित्याग कर दिया है ।

शंभुनाथ द्वारा अपनाई गई शैली से दो बातें निष्कर्ष रूप में सामने आती हैं :-

1. कथा-सूत्र को थामे वे रामायण के मुख्य मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं और इस मार्ग से निकलने वाली भावुकता की शाखा-प्रशाखाओं की प्रायः अनदेखी कर देते है ।

2. उन्हें राम का लौकिक चित्रण अभीष्ट है । इसलिए कुछेक स्थलों पर तुलसी के चमत्कारिक प्रसंगों का स्पर्श नहीं किया गया ।

यद्यपि शंभुनाथ आरंभ से ही विनम्र व्यक्तित्व के स्वामी थे, परंतु मानस के अवगाहन के उपरांत वे तुलसी की असीम विनम्रता एवं शिष्टता से बेहद प्रभावित हुए । इसलिए रामायण की भूमिका में उन्होंने नम्रतावश अपने संकोच और अज्ञान के विषय में लिखा—"अपने साथियों के चरणों में बैठकर उनकी रचनाओं को सुनने वाला एक गूंगा, बावरा व्यक्ति हूँ । कभी-कभार एकाध बेतुकी हाँक दिया करता था । बुद्धि, विद्या, धन कुछ भी पास न था । (रामायण) लिखने का काम मेरी सामर्थ्य से परे था ।.....स्वयं को मैं कवि या लेखक नहीं समझता ।.....मैं व्यापारी भी नहीं कि कुम्हारिन की तरह अपना भाँडा स्वयं बजाऊं और सराहूँ ।"

यों लगता है जैसे वे तुलसी के शब्दों को दुहरा रहे हों—
कवि न होउं नहिं चतुर कहावउं । मति अनुरूप रामगुन गाबउं।
कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ।
—तुलसीदास

कवि शंभुनाथ का कथन है—
"फ्ही पढ़ने-सुनने आलें गी नौन्नां अरज गुजारी ।
मेरे औगन मन निं लाएओ, में नेईं कोई लखारी ।"

बहरहाल, उन्होंने जहाँ कहीं मानस-कथा से हटने का जतन किया है, वहीं कथा-धारा में निरंतरता बनाए रखने के लिए कतिपय मौलिक पदों की उद्‌भावना भी की है । जहाँ कहीं वे मानस के दोहा-चौपाई छंद में व्यक्त भाव-बोध, कथा-सूत्र, शब्दावली अथवा सांस्कृतिक रूढ़ियों के कारण अनुवाद में रुकावट महसूस करते हैं, वहीं कठिनाई से परिहार हेतु मौलिक सूझ-बूझ का प्रदर्शन करते हैं ।

तुलसीदास की कुछेक दोहा चौपाइयों के शंभुनाथ द्वारा किए गए भावानुवाद की एक झलकी प्रस्तुत है :—

हनुमान भरत भेंट

1. को तुम्ह तात कहाँ ते आए ।
मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ।
—तुलसीदास

तुस कु'न, कुत्थूं आए सज्जन, मी नेहू बचन सनाए,
कन्न ते नि मी छलै दे मरे, नैन ते नि भरमाए ।

—शंभुनाथ

2. मारूत सुत मैं कपि हनुमाना ।
नाम मोर सुनु कृपा निधाना ।

—तुलसीदास

पवन-पुत्र, बानर जाति दा, नां मेरा हनुमान ।
दास में दीन दयाल दा, जो न कृपा निधान ।

—शंभुनाथ

राम के लौटने पर समाचार नगर में फैलते ही स्त्री पुरुष सभी हर्षित होकर उनके दर्शनार्थ और स्वागत के लिए दौड़े—

3. दधि दुर्बा रोचन फल फूला, नव तुलसी दल मंगल मूला
भरि भरि हेम थार भामिनी गावत चलिं सिंधु गामिनी ।

—तुलसीदास

दुद्ध, दरुब्भां, गोरोचन, फल, फुल्ल सुन्ने दे थाल ।
लेई सुहागनां चलन गांदियां, मस्त हाथी दी चाल ।

—शंभुनाथ

4. जे जैसेहिं तैसेहिं उठी धावहिं, बाल वृद्ध कहँ संग न लावहि।
एक-एकन्ह कहँ बूझहिं भाई, तुम देखे दयाल रघुराई ।।

—तुलसीदास

मरद जड़े बी जिस चाल्ली हे लेई पे द्रोड़न ।
बच्चा, बुड्ढा कोई निं सांभै जो रेही जा सै छोड़न ।
द्रौड़दे जंदे, इक दूए गी पुच्छन बारो-बारी ।
की जी कुसै औंदे दिक्खे, रघुकुल-कुंज-बिहारी ।

—शंभुनाथ

5. अवध पुरी प्रभु आवत जानी, भई सकल सोभा कै खानी।
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा, भई सरजू अति निर्मल नीरा।।

—तुलसीदास

प्रभु दा औना सुनियै अजुध्या शोभा लगी खलारन ।
त्रऊं भांती दी पौन आनियै लगी फंडाके मारन ।

सरजू दा निर्मल जल रिप-रिप कंढे पासै हांबै ।
फुल्ल खिड़ी पे रुक्खें बूहुटे, बेल्लें बांदै लांबै ।।

—शंभुनाथ

पाँचवीं चौपाई के अनुवाद में अंतिम पंक्ति का भाव मूल चौपाई में अन्तर्निहित नहीं है । परंतु साधारणतया चौपाई के भाव को अक्षुण्ण रखने का भरसक प्रयास किया गया है । अनुवाद में भाव को क्षति पहुँचाए बिना पद की मूल शक्ति एवं समर्थ को उपयुक्त सांस्कृतिक पर्याय से व्यक्त किया गया है । यथा—

"परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपा सिंधु उर लाए ।
स्यामल गात रोम भए ठाढे । नव राजीव नयन जल बाढ़े ।".

—तुलसीदास

अवधी 'बर करना' के बदले डोगरी 'ओड़ करना' का प्रयोग 'उर लगना' का 'जप्फी मारना', 'रोम खड़े होना' का 'सरकंढे खिल्लरना' आदि के सर्वथा उपयुक्त पर्यायों से वे मूल मन्तव्य को पूर्ण निष्ठा, सफलता एवं प्रामाणिकता से व्यक्त कर पाए हैं ।

रामायण की रचना के समय शंभुनाथ के समक्ष सांस्कृतिक उद्‌बोधन की भावना प्रमुख रही है । अवसर उपलब्ध होने पर वे डोगरा संस्कृति से संबद्ध तत्त्वों का दिग्दर्शन करवाने की ताक में रहते हैं । यद्यपि मानस के सुप्रसिद्ध कथानक में निहित कोशलदेशीय सांस्कृतिक तत्त्वों के कारण ऐसा कर पाना उतना सहज नहीं है तो भी शंभुनाथ ने यथावसर ऐसे प्रयत्न अवश्य किए हैं और राम के सुप्रसिद्ध चरित्र पर किसी प्रकार की आँच न आने देकर डोगरा संस्कृति के विशेष तत्त्वों का सुचारू आरोप करके उनके परंपरागत औदात्य को कायम रखा है । राम-सीता विवाह के प्रसंग में वैवाहिक रीतियां डोगरा क्षेत्र में प्रचलित वैवाहिक औपचारिकताओं के दृष्टिगत वर्णित की गई हैं । सांस्कृतिक उद्‌बोधन की इस शैली द्वारा राम कथानक को डोगरा जनपदीय संस्पर्श दे दिया गया है । यथा, तुलसीदास द्वारा वर्णित राम और सीता के विवाह के विशद वर्णन में प्रयुक्त लोक-तत्त्व का रूपांतरण डोगरा संस्कृति में वर्तमान लोक-तत्त्व द्वारा किया गया है । लोक-तत्त्व को जिस विस्तार

एवं प्रामाणिकता से तुलसीदास अभिव्यक्ति प्रदान करते है, वैसे शंभुनाथ नहीं कर पाए । फिर भी उन्होंने अपनी ओर से रोचकता लाने के लिए लोक-संपृक्ति का भरसक प्रयास किया है ।

कविता एवं गज़ल को शंभुनाथ ने एक स्पष्ट नीति के अन्तर्गत अपने धार्मिक विश्वासों के प्रकटीकरण के लिए उपयोग में नहीं लाया, हालांकि कहीं-कहीं वे ईश्वरीय विधान की सर्वोच्चता के प्रति नतमस्तक हैं । उन्हें ईश्वर से शिकायत है कि उसने उन का भाग्य लिखते समय तमाम कष्ट और अवमाननाएं उनके नाम लिख दीं, एक भी इच्छा के पूर्ण होने का वरदान न दिया । जीवन एक बोझ बन गया । इसके बावजूद वे न तो नास्तिकता धारण कर पाए और न ही खुलकर ईश्वरीय सत्ता को ललकारने की राह पर ही अग्रसर हुए । अलबत्ता, 1957 ई. के आरंभ में उन्होंने रामायण का लेखन आरंभ करके निजी आस्था को अभिव्यक्ति प्रदान की । राम की संघर्षशील जीवन-कथा उनके लिए इस दृष्टि से निहायत प्रेरणाप्रद रही है कि सिंहासन का अधिकारी होते हुए भी उन्हें न केवल बनवास मिला, बल्कि अपहरण के कारण पत्नी से वियोग, रावण से युद्ध और अंततः राज्य प्राप्ति पर पुनः पत्नी से विछोह सहन करना पड़ा । यदि धरती पर अवतरित ईश्वर के लिए भी जीवन निरंतर एक ललकार बना रहता है तो एक साधारण प्राणी होने के नाते शंभुनाथ अपने लिए इसे एक संतोषजनक स्थिति मान सकते थे । वस्तुतः शंभुनाथ अपने जीवन के कष्टों की पहचान भगवान राम के कष्टों से करके एक हार्दिक तोष प्राप्त करते थे । सेवा निवृत्ति के बाद वे प्रायः कहा करते संघर्ष ही जीवन है । राम-कथा में निहित इसी यथार्थ ने उन्हें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रामायण के प्रणयन में प्रवृत्त किया था ।

डोगरी कविता में शंभुनाथ का स्थान

किसी कवि या लेखक का साहित्यिक मूल्यांकन उसके लेखन के आधार पर किया जाता है । लेखन की दिशा निर्धारित करने में उसके व्यक्तित्व एवं जीवन-स्थितियों का विशेष एवं प्रत्यक्ष हाथ रहता है । किंतु साहित्य में उसके स्थान का निर्धारण किस तरह किया जाए—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ? ऐसा एकमात्र एवं निर्विवाद निकष उस भाषा के विकास महायज्ञ में उसके द्वारा प्रदत्त योगदान को ही माना जाना चाहिए । योगदान से अभिप्राय उस भाषा में साहित्य की गुणात्मक अभिवृद्धि से लिया जाता है । कुछ लोग परिमाण को रचनात्मकता का पैमाना मानने की भ्रांत धारणावश संख्या को ही योगदान की परिभाषा भी समझते हैं । जबकि ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उक्त लेखक ने मानवीय गरिमा, जीवन-यथार्थ और उर्वर कल्पना की दृष्टि से कितनी पक्व रचनाएं दी हैं । ऐसे भी साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने एकाध कृति से ही उस भाषा की विशेष विधा में युगांत उपस्थित कर दिया । अमर कथा-शिल्पी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' नामक कहानी, इसी श्रेणी की रचना है ।

गुणात्मकता की दृष्टि से शंभुनाथ की रचनात्मकता के दो पहलू पर्याप्त रूप से उजागर हुए हैं—

1. परंपरा का परिपालन
2. मौलिक अवधारणा

परंपरा-पालन से तात्पर्य यहाँ उन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुपालन से है जिन से शंभुनाथ का समय-समय पर परिचय होता रहा है । इतिवृत्त वर्णन की शैली जहाँ उन्होंने वरिष्ठ कवियों से प्राप्त की वहीं छायावाद से उनका परिचय अंग्रेज़ी और हिंदी भाषाओं के माध्यम से हुआ । प्रगतिवाद को उन्होंने तत्कालीन लेखक मित्रों

के साहचर्य से ग्रहण किया । परंतु किसी भी विचार या प्रवृत्ति को वे शत-प्रतिशत, उसके प्रचलित सैद्धांतिक रूप में ग्रहण नहीं करते, अपितु उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन-परिवर्धन भी करते हैं ।

व्यक्तिगत अनुभव और निरंतर चिंतन-मनन के फलस्वरूप वे मौलिक उद्‌भावना को कविता के परिधान में प्रस्तुत करते हैं ।

शंभुनाथ के समकालीन कवि परमानंद अलमस्त ने लगभग उन तमाम विषयों पर अपनी कलम आजमाई थी, जिन्हें शंभुनाथ ने अपनी रचनाओं में स्वतंत्र रूप से उरेहा है । वे अलमस्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों के प्रशंसक थे । परंतु अलमस्त ने जहाँ कबीर की फक्कड़ शैली में ईश्वर को जगत का नियंता, कर्ता, भर्ता, हर्ता माना और सख्य-भाव से उसकी अर्चना की, वहीं शंभुनाथ ने ईश्वर को अपनी कविता का केंद्र बिंदु नहीं बनाया । वे मुख्यता नियतिवाद के मार्ग पर चल पड़े थे । उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के केंद्र में जिस वस्तु को सर्वशक्तिमान माना और सख्य-भाव से उसकी अर्चना की, वहीं शंभुनाथ ने ईश्वर को अपनी कविता का केंद्र बिंदु नहीं बनाया । वे मुख्यता नियतिवाद के मार्ग पर चल पड़े थे । उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के केंद्र में जिस वस्तु को सर्व-शक्तिमान माना, वह ईश्वर नहीं समय है । समय या काल-चक्र का पहिया परिवर्तन को जन्म देता है—ऐसा कवि का विश्वास है । इस समयवादी सोच की पृष्ठभूमि में भारतीय वैचारिकता का पर्याप्त दखल रहा है । काल-चक्र को ईश्वर के अधीन वर्णित किया जाता है । नियति एवं काल-चक्र आदि का वर्णन करने वाली धर्म-भीरू भारतीय मानसिकता सदा ईश्वर को कार्य एवं कारण का मूलाधार मानती रही है । इसलिए समयवाद परंपरा से ईश्वराश्रित रहा है ।

शंभुनाथ चूंकि प्रगतिवादी-साम्यवादी गुट के कवियों-लेखकों से आंशिक रूप से प्रभावित रहे थे, इसलिए उन्होंने परिवर्तन का कारण ईश्वर को न मानकर समय को माना । यद्यपि वे नियतिवाद और भाग्यवाद के पोषक हैं, तथापि उन्होंने प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है ।

परंपरा और नए आयामों की तलाश :

शंभुनाथ को इस बात का श्रेय जाता है कि आज़ादी के तुरंत बाद वर्णनात्मकता की क्षीण पड़ चुकी शैली को उन्होंने न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि उसमें पर्याप्त साहित्यिक सौंदर्य गरिमा एवं गांभीर्य की अभिवृद्धि भी की । प्रकृति-चित्रण विषयक कुछेक कविताओं में उन्होंने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग करके जहाँ वर्णनात्मक शैली को नया अन्दाज़ दिया, वहीं वर्ण्य-विषय को अधिक सार्थक और सक्षम बनाया । इस शैली में एक ओर उन्होंने जहाँ इतिवृत्त मूलक कविताएं लिखीं, वहीं आगे चलकर प्रगतिशील दृष्टिकोण भी रूपायित किया । इन कविताओं में चित्रात्मक शैली के प्रयोग से भाव-सौष्ठव का अनुपम रूपायण हुआ है । बिंब निर्माण से इतिवृत्त अत्यंत आकर्षक और हृदयहारी बन पाया है—

"मस्स काले बाल, उन्दी लैहर उन्दा खोभ,
बक्खरी गै लिश्क, उन्दा बक्खरा गै रो'ब ।
सब्भै किज दिक्खी-दिक्खी, पैह्लें मुसकाई,
फ्ही झट दोनीं हत्थे कन्ने पानी दित्ता ल्हाई ।"

अर्थात्—मसी के समान काले, चमकीले, लहरीले, खमदार बालों का अद्‌भुत आकर्षण था । अपना रूप निहार कर पहले तो वह स्वतः मुस्कुरा दी, फिर कहीं अपनी ही नजर न लग जाए, इस आशंका से दर्पण बने पानी को हाथों द्वारा हिलाकर प्रतिबिंबित आकृति को मिटा डाला ।

वस्तु-वर्णन की परिपाटी से आगे बढ़कर वे मानवीकरण के उपकरण द्वारा इस शैली को नए आयाम दे पाए हैं । एक सफल कवि की यही विशेषता है कि जहाँ कहीं वह अपनी लेखनी को रुद्ध होते देखता है, वहीं परंपरा को तराश कर नया मार्ग गढ़ लेता है ।

शंभुनाथ ने सूक्ष्म भावों पर केंद्रित कविताएं भी लिखी हैं, परंतु परंपरा मोह के कारण वे इतिवृत मूलक कविताओं से तृप्ति का विशेष एहसास कराते हैं । 'फूलां दा कुर्ता', 'पत्तन', 'विधवा' आदि कविताओं

द्वारा उन्होने विशेष घटनाओं का वर्णन करने के अतिरिक्त आस-पास के जीवन के प्रति अपनी तीक्ष्ण दृष्टि का प्रदर्शन किया है और एक निश्चित संदेश भी दिया है । इन तीन कविताओं में कथानक के रूप में एक संदेश निहित है जो आरंभिक दशा में तो रहस्य के पर्दे के पीछे छिपा रहता है, किंतु जैसे-जैसे कविता परिणति की दिशा में आगे बढ़ती है, संदेश स्पष्ट होने लगता है । 'विधवा' नामक कविता में वैधव्य ढोते हुए संसार में जीने की कठिनाइयों का वर्णन है । परंतु इसका अंत निहायत असहज है । पति की चिता के निकट बैठी विधवा-स्त्री कवि को विधवा के अर्थहीन जीवन का तथ्य बतलाकर स्वयं चिता में कूदकर आत्मदाह कर लेती है । आधुनिक युग में सती की कल्पना ही रोंगटे खड़े कर देती है । लगता है कवि इस विश्वास को अंतरतम में कहीं पाले हुए है कि वैधव्य ढोने से मर जाना बेहतर है । वस्तुतः उन्होंने अपनी बहन ईशरो का कष्टप्रद वैधव्य देखा था, दूसरे यह उनकी प्रथम कविता थी और अभी वे सामंती मानसिकता से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए थे—इसीलिए मध्यकालीन समाजिक कुरीति को एक समाधान के रूप में रेखांकित करने की दिशा में उन्मुख हुए । 'पत्तन' कविता में जवानी और बुढ़ापे के कटु मिलाप का मंज़र चित्रित करके अस्थिर सुखानुभूति को शाश्वत सत्य न मानने का संदेश दिया गया है । 'फूलां दा कुर्ता' में गरीब और अनुसूचित लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रित किया गया है जो अप्रत्यक्ष रूप से पाठक के हृदय में उन परिस्थितियों के प्रति जागृति की चिनगारी प्रज्वलित करता है जो सदियों से गरीबी के बोझ तले दबे हुए हैं ।

छंदोबद्ध लंबी कविता की शुरुआत भी उनकी इन्हीं कविताओं से मानी जानी चाहिए । कथात्मक कविता के क्षेत्र में सफलता का प्रदर्शन करने के कारण उन्हें तत्कालीन कवि समाज में काफी सराहा गया । इस शुरुआती पूर्वाभ्यास के कारण बाद में वे छंदोबद्ध रामायण लिखने की दिशा में प्रेरित हुए । इतिवृत्त वर्णन का अनुभव होने के कारण ही वे रामायण के वृहद कथानक को सफलता से डोगरी भाषा में ढाल पाए ।

भविष्य द्रष्टा कवि :

शंभुनाथ इतिवृत्त परंपरा के अंतिम कवि हैं । उनके बाद नई पीढ़ी ने गज़ल को सराहा और स्वागतम् कहा है । शंभुनाथ ने नव युग का सुर पहचान कर गज़ल शैली में भी सफलता दर्ज की । वस्तुतः वे ऐसे कवि हैं जिनका एक कदम बीत चुके कल में है और दूसरा आने वाले कल में । कदमों की यह लयात्मकता गतिशीलता की निशानी है । नये युग के साथ चलने का उनमें अदम्य साहस है । साहित्यिक चेतना की दृष्टि से वे कल और आज के बीच की कड़ी की भाँति हैं ।

धरा से जुड़ने का आग्रह और लोक-तत्त्व :

शंभुनाथ अपने सांस्कृतिक विरसे से लोक-तत्त्व को कल की एक अमूल्य यादगार के रूप में संभाले हुए हैं और यह उनकी कविता की अंतरवर्ती शक्ति है । उन्होंने वर्णनात्मक शैली में डोगरा जन-जीवन एवं परिवेश का अत्यंत कलात्मक और प्रामाणिक चित्रण किया है । सांस्कृतिक रूढ़ियों के प्रयोग से कविता का धरा और जीवन से सफल गठबंधन किया गया है । 'पत्तन' कविता के प्रथम चार पदों में एक औसत और आदर्श डोगरा गाँव का सूक्ष्म चित्राकंन किया गया है । "गोबर और सफेद मिट्टी से पुते कच्चे घरों का जमघट, प्रत्येक हृदय में रोपा गया प्रेम का विरवा और खुले आंगन में लहलहाते तुलसी के पौधे । घर की मुंडेर पर टिकी पौड़ी । घरों के संग बने चौंतड़े, पशुओं की खुरलियां और खूंटे । हर घर और आँगन को घेरे एक परकोटा ।" इस सजीव चित्रण द्वारा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की सृष्टि की गई है जो आगे चलकर सौंदर्य भावना और अंत में जीवन के एक कड़वे सच का पर्दा खोलता है ।

'विधवा' शीर्षक कविता में विधवा द्वारा पति की चिता में कूदकर सती होने का प्रसंग चाहे कितना ही बनावटी और ग़लत क्यों न लगे, यह तथ्य है कि सामंती युग में रंजीतदेव के राज्य तक डोगरा भूमि पर सती प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त रही थी । इसे एक महान धार्मिक कृत्य माना जाता था । यही कारण है कि डोगरा

जाति की प्रत्येक प्रजाति और कुन्बे में ऐसी अनेक देवियों को कुलदेवी माना जाता है, जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक कारणों से सती होना श्रेयस्कर समझा । जम्वाल खानदान की कुलदेवी सत्यवती उस समय सती हुयी जबकि उनकी डोली भी ससुराल नहीं पहुँची थी । सती-पूजा डोगरा समाज एवं संस्कृति का एक अभिन्न अंग है । अतः विधवा के आत्मदाह के विषय में पूर्वोल्लिखित पृष्ठभूमि के अलावा इस सांस्कृतिक पूर्वग्रह ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

'बदली' कविता में सांस्कृतिक जुड़ाव का परिदृश्य और भी स्पष्ट हो उठता है । 'औसियां' डालना या रेखाएं खींचकर विरहणी का पति की प्रतीक्षा करना, राखी अथवा भैया दूज के लिए आकुल बहिन का रूपक, कैकेयी की ईर्ष्या जनित उद्विग्नता अथवा 'सालू', 'बारे भरना' जैसी वैवाहिक शब्दावली और अनुष्ठानों का प्रयोग कविता को विश्वसनीयता के धरातल पर पुख्तगी प्रदान करता है । अपनी रचनाओं में उन्होंने स्थान-स्थान पर सांस्कृतिक स्पर्श देने का प्रयास किया है । उसी की एक बानगी के रूप में 'बारे भरने' की प्रक्रिया भी है । डोगरा वैवाहिक रीति में एक अनुष्ठान के अन्तर्गत मामा भांजी पर लौटे से पानी वारता है । धरती रूपी दुल्हन पर बादल द्वारा जल बरसाने की रूपक बाँधकर कवि ने प्रथामूलक शब्दावली के प्रयोग से कविता को मर्म-स्पर्शी मोड़ दिया है ।

डोगरा संस्कृति में ग्राम्य तत्त्व विशेष महत्ता रखते हैं । कृषि केंद्रित जन-जीवन में फसल पकने के अवसर को अनुष्ठान का सा महत्त्व दिया गया है । उत्तर भारत में फसल पकने पर विशेष खुशियां मनाई जाती हैं । नव-वर्ष के आगमन पर किसान नाचते-गाते हैं । उधमपुर, बिलावर, नागबनी और अनेक अन्य स्थानों पर लाखों की संख्या में किसान एकत्र होकर खुशी का प्रदर्शन करते हैं । गाँवों में दंगल-कुश्ती का आयोजन किया जाता है ।

'भांगड़ा' कविता में डोगरा संस्कृति के इसी पक्ष को लेकर लोक-जीवन का निदर्शन किया गया है । किसान जो कि मेहनत बीजता और मेहनत ही काटता है बैसाखी के दिन बेफिक्र होकर

मेले में सम्मिलित होने के लिए निकल पड़ता है । कवि उसे प्रेरित करता है कि आज तू ढोल के ताल पर नाच ले । घड़ी-भर दरांती और दसांगी रखकर जाँघिया कस ले । शरीर पर तेल लगा और दर्पण में चेहरा निहारकर, हाथ में रूमाल और सोटा थाम और खुशी के तालपर थिरक ले–

"ब'न्नी लै जांगिया, पट्ट लश्काई लै,
सांभी लै शीशा, रमाल ते डांग ।"

शंभुनाथ के समकालीन कवियों ने उन्हीं की तरह कमोबेश लोक-तत्त्व का आश्रय लेकर अपनी कविता के लिए प्रासंगिकता के सूत्र तलाश किए हैं, जबकि युवा कवियों ने लोक-तत्त्व को निष्कासित करके जैसे धरा से अपनी कविता के रिश्ते पर कुठाराघात किया है ।

प्रथम महाकाव्य का प्रणयन :

शंभुनाथ कलम और विचार के धनी कवि के रूप में उभरते हैं । उनकी काव्य क्षमता का साक्ष्य उनके द्वारा रचित रामायण है । डोगरी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान मात्र इस तथ्य से निश्चित है कि उन्होंने डोगरी को इसका प्रथम महाकाव्य प्रदान किया । यद्यपि 'बीर गुलाब' (दीनूभाई पंत) नामक खंड-काव्य डोगरी में मौजूद था, परंतु आज़ादी के बाद उभरे सामाजिक परिदृश्य के कारण यह अपनी प्रासंगिकता खो चुका था । इसमें डोगरा राष्ट्रवाद का वर्णन तो अवश्य था, किंतु इस संकुचित राष्ट्रवाद के विरोधियों को तथा उनके पंथ और जाति को संबोधित करके बार-बार ललकारे जाने से यह स्वतंत्र एवं धर्म-निरपेक्ष भारत में साहित्यिक सद्कृति कहलाने योग्य नहीं रहा था । अतएव इस दृष्टि से प्रबंध काव्य के क्षेत्र में रामायण ही प्रथम साहित्यिक कृति थी । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में यह शंभुनाथ का प्रथम प्रयास भी था ।

रामायण जैसे बृहद और जीवन के विविध प्रश्नों और चुनौतियों से भरे ग्रंथ की रचना न केवल इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसके केंद्र में पुरुषोत्तम राम जैसे जन-नायक का व्यक्तित्व है, बल्कि इसलिए

भी कि यह ग्रंथ भारतीय जीवनादर्शों का उच्चतम मानदंड भी बन चुका है । भारतीय संस्कृति में विश्वकोश का स्थान रखने वाले इस कथानक से कवियों ने सदा प्रेरणा पाई है । अतएव शंभुनाथ के समक्ष आज के युग में यदि किसी व्यक्ति को जीना है तो राम बनकर जीना होगा—निस्पृह, शांत, छोटे-बड़े का उचित सत्कार करने वाला एवं धीर-वीर योद्धा । जीवन के ज़हर को हंसकर पीने और चुनौतियों का सामना करने वाले व्यक्ति के लिए राम का व्यक्तित्व प्रकाश-स्तंभ की महत्ता रखता है । इस दृष्टिकोण ने शंभुनाथ को रामायण के प्रणयन के लिए प्रेरित किया है ।

कविता : स्वरूप और प्रयोजन :

शंभुनाथ की कविताओं के विश्लेषण एवं विवेचन से कुछेक निष्कर्ष सहज ही सामने चले आते हैं । यथा—

1. उनके काव्य का मुख्य अभिप्रेत आदर्शवाद और मानवतावाद का संवर्धन, प्रतिगामी मूल्यों का मर्दन और राष्ट्रीयता का अभिवर्धन है ।

2. इतिवृत्तात्मकता, स्वच्छंदतावाद और प्रगतिवाद को अपना कर उन्होंने भारतीय फलक पर उभर रही प्रवृत्तियों से ताल-मेल बनाए रखा है । इससे उनकी कविताओं में शैली के साथ-साथ वैचारिकता के स्वाभाविक विकास को भी लक्षित किया जा सकता है ।

3. परंपरा द्वारा अनुमोदित परिपाटी के अनुरूप वे कविता की प्रयोजनीयता को स्वीकार करते हुए अपनी अधिकांश कविताओं द्वारा विशेष संदेश प्रतिपादित करते हैं ।

4. कविता में अध्यात्मवाद के सप्रयास निषेध के बावजूद कतिपय स्थानों पर वे ईश्वर का वर्णन करने लगते हैं ।

5. मानवतावाद के समर्थक होते हुए भी वे अहिंसा विषयक गाँधीवादी धारणाओं की पुष्टि नहीं करते । उनका विश्वास है कि हम पाश्विक मनोवृत्ति के संसार में रह रहे हैं । भलमानसता को यहाँ कमज़ोरी और कायरता का प्रतीक माना जाता है ।

उपर्युक्त स्वरों के अतिरिक्त उन्होंने आधुनिक भाव-बोध की

कुछेक कविताएं भी लिखी हैं । इन में उन की लेखनी की धार सहज ही महसूस की जा सकती है । आज की सभ्यता ने रिश्वतखोर नामक एक विचित्र प्राणी को जन्म दिया है । 'बड्डीखोर' शीर्षक कविता में व्यंग्य और प्रवाहपूर्ण भाषा के सहारे इसी प्राणी के हास्यास्पद चित्रण द्वारा कवि ने आधुनिक समाज में चली आई मूल्यों की गिरावट के प्रति अपनी न-पसंदगी प्रकट की है । 'क्लर्क' भी सामयिक संदर्भों से प्रेरित एक मुकम्मल कविता है । इन दोनों कविताओं में सांस्कृतिक संक्रांति के दौर में उभरी विकृतियों पर चोट की गई है । इन दोनों का सफल लेखन इस बात का प्रबल संसूचक है कि आधुनिक विषयों पर भी कवि की मज़बूत पकड़ है । बदले हुए परिवेश को उसने सूक्ष्मता से आत्मसात् किया है, यह दो कविताएं उसी का प्रतिफल हैं । कवि मानस में मूल्यों के विघटन को लेकर चलने वाली दुविधा आधुनिक भाव-बोध के नवीन मोड़ पर पहुँचते-पहुँचते स्वतः तिरोहित हो जाती है और उसकी कविता में नया निखार परिलक्षित होने लगता है ।

गज़ल विधा : अनुभव संपन्नता का प्रतीक :

डोगरी गज़ल की समग्र यात्रा में उनकी गज़लों का विशेष स्थान है । मार्मिकता और प्रसाद गुण संपन्नता के कारण पाठक सहज ही इन्हें समझ और सराह लेता है । अन्तर्निहित पुख्तगी के कारण डोगरी गज़ल के आरंभिक दौर में इन्होंने क्रोश-स्तंभ की भूमिका निभाई थी । कथ्य, विचार एवं भाव की गहराई तथा सार्वजनीन सत्य के गुण इन गज़लों की श्रेष्ठता के मुंह बोलते प्रमाण हैं ।

गज़ल विधा को उनकी देन निम्नलिखित बिंदुओं में सहज स्पष्ट हो जाती है —

1. उर्दू गज़ल के स्वभाव और स्वरूप का डोगरी में अवतरण ।

2. गज़ल की व्यक्तिनिष्ठता के कोण से प्रस्तुति जिसे परवर्ती डोगरी शायरों ने भी अपनाया है ।

3. वे जिस संक्रांतिक दौर से गुज़रे हैं उसका प्रभाव उनकी

वैचारिकता पर भी पड़ा है । यह तथ्य अंतः साक्ष्य के रूप में गज़लों में वर्तमान दिखाई पड़ता है ।

4. परंपरा और आधुनिकता के टकराव की अनुगूंज कवि मन की दुविधा के रूप में गज़लों में साफ सुनाई देती है ।

5. संसार का दुःखमय स्वरूप और भाग्यवाद पर विश्वास, कुछ ऐसी कड़ियां हैं जिन्हें उन्होंने भारतीय जनमानस की परंपरागत दाय के रूप में गज़लों में सहेजा है । ईश्वर से मिले कष्टों के बारे में शिकवे के तेवर में बात करते हुए उन्होंने डोगरी कविता को नया अन्दाज़ दिया है । उनके बाद के, परंतु उन्हीं की आयु वर्ग के लोगों ने ईश्वर के प्रति और भी कोरी और साफ-शफ्फाक बातें कही हैं । जबकि बाद के युवा कवियों ने कष्टों के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, भाग्यवाद तथा ईश्वर आदि विषयों का प्रायः निषेध-सा किया है । उन्होंने प्रायः आर्थिक विषमताओं से उभरी व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान अधिक केंद्रित किया है । इस तरह परंपरागत भारतीय विचार शैली जो शंभुनाथ तक किसी तरह निभती चली आई थी, उन्हीं के साथ लुप्त होती दिखती है ।

6. गज़ल की विषयगत निरंतरता उनकी विशेषता है । प्रायः प्रत्येक गज़ल में शेऽर ऐसे हैं जो मुसलसल चलते हैं । आम तौर पर गज़ल का प्रत्येक शेऽर अलग भाव की व्यंजना करता है । परंतु यदि भावों की अलग-अलग रंगत एक नैरंतर्य में बिना अपना सौंदर्य खोये कायम रहती है तो गज़ल को सफल माना जाता है । नैरंतर्य का यह प्रयोग शंभुनाथ की अनेक गज़लों में सफलता से निभ पाया है ।

यह तथ्य गौर-तलब है कि उर्दू गज़ल का उसलूब अपना कर भी शंभुनाथ ने उसका मिजाज़ अपनाने की गलती नहीं की, बल्कि डोगरा सांस्कृतिक खंड से अथवा भारतीय संस्कृति के महा-कोष से उपयुक्त बिंबो, मिथकों तथा शब्द-पदों का समुचित प्रयोग किया है । परंपरागत उर्दू गज़ल में यूसुफ-जुलेखा, मन्सूर, लैला-मजनू जैसे प्रेम प्रतीकों का अत्यधिक प्रयोग होता रहा है, किंतु शंभुनाथ फैशन की रौ में बह कर, इन सुप्रसिद्ध कथानकों का हवाला देने का लोभ

नहीं करते । वे तो विरह के उत्ताप से आँसू के मोती बनने की विशुद्ध भारतीय परंपरा से जुड़े रहते हैं ।

वे पुरातन और नूतन मूल्यों में शाशवत के उपासक हैं । इतना ही नहीं, वे सामंतवादी जड़ता को उखाड़कर उसके स्थान पर नए जीवन मूल्यों को स्वगातम् कहने वाले कवियों में अग्रणी हैं ।

परिशिष्ट-1

शंभुनाथ कृत रामायण में वर्णित

राम राज

राम दे गद्दी बौने कन्ने खुश होई त्रैलोकी,
मिटी गे सारे दुक्ख, रोग, सुख देन लगी पे चौकी ।
कोई कुसै ने कुसै हाल निं रक्खै दुक्ख बरोध,
भेत-भाव कोई रेहा निं बाकी, बधदा गेआ समोध ।।1।।

चारै बर्ण लगी पे सेबन अपना-अपना धरम,
वेद-शास्तरें बिच्च लिखेदे करदे रौंहुदे करम ।
धरम अपने चौन्नें चरणें, आनी छाया जग्गै,
सुखने बिच्च बी पाप नि हुंदा, दुक्ख कदे नि लग्गै ।।2।।

दुक्ख-पीड़ नेईं होऐ, नां कोई मरदा छोटी आयु,
सोहुनी बांकी देहु सबनें दी, हर चाल्ली ने राजू ।
कोई दुखी नां कोई दलिद्री, नां कोई लभदा दीन,
नां मूरख, नां चंगे लक्खनें कोला सुझदा हीन ।।3।।

रुक्ख ते बूटे, जाड़, दराड़ें फुलदे-फलदे भरियै,
शेर ते हाथी रौंहुदे किट्ठे बड़े गै प्रेमै करियै ।
पशु, पक्खरु आपूं-बिच्चें रौंहुदे बैर बसारी,
सबनें दे बिच आपूं-बिच्चें प्रीत बड़ी गै भारी ।।4।।

तुलसीदास कृत रामचरित मानस में वर्णित

राम राज्य

राम राज बैठें त्रलोका ।
हरषित भए गए सब सोका ।।
बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप विषमता खोई ।।1।।

बरनाश्रम निज निज धरम-
निरत बेद पथ लोग ।।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि-
नहिं भय सोक न रोग ।।2।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहि कोउ अबुध न लच्छनहीना ।।3।।

फूलहिं फरिहं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक संग गज पंचानन ।।
खग मृग सहज बयरू बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीत बढ़ाई ।।4।।

गान पक्खरु गीत मिट्ठड़े, पशुएं दे सब टोल,
चुग्गन, चरन, कदाड़े मारन, करदे फिरन कलोल ।
ठंडी मिट्ठी ब्हा चलदी ऐ, गुन-गुन करदे भौंरे,
फुल्लें दे रस चूसी-चूसी करदे घोर-मसोरे ।।5।।

बूटें-बेल्लें बिच्चा थां-थां चौंदा रंवै मखीर,
गमां दिंदियां दुद्ध रज्जियै, छैल, सडौल शरीर ।
धरती उप्पर बारां म्हीन्ने खेतर रौहुन रढ़े दे,
त्रेता जुगै च सतजुग आले लक्खन आई बड़े दे ।।6।।

राम प्रभु हर चाल्ली करदे भ्राएं कन्ने प्यार,
सबनें भांती उन्हें गी दसदे नीती दा ब्यवहार ।
खुशी-खुशी नै बसदे-रसदे, नगरी दे सब लोग,
हर भांती ने भोगन रलिये देवतें आले भोग ।।7।।

राम प्रभु बड्डे बेल्लै गै करियै रोज शनान,
अधिकारी पुरशें दे कन्ने सभा च आई जान ।
मुनि वसिश्ट बी आई उन्हें गी वेद, पुरान सुनांदे,
जान्नी जान प्रभु सब जानन, फ्ही बी मन चित लांदे ।।8।।

(डोगरी रामायण से संकलित अंश)

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा ।
अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा ।
गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ।।5।।

लता विटप मागें मधु चवहीं ।
मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ।।
ससि संपन्न सदा रहे धरनी ।
त्रेतां भइ कृतजुग कै करनी ।।6।।

राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भांति सिखावहिं नीती ।।
हरषित रहहिं नगर के लोगा ।
करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ।।7।।

प्रातकाल सरजू करि मज्जन ।
बैठहिं सभां संग द्विज सज्जन ।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं ।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ।।8।।

(सामने वाले पृष्ठ पर उद्धृत पदों को मूलतः तुलसीदास विरचित रामचरित मानस की इन दोहा चौपाइयों से अनूदित किया गया है ।)

डोगरी कविता

साथी दा गीत

कोई ऐसा गीत सुना साथी, सारी दुनिया गी भुल्ली जां ।
लै छाई जा मनमौजा दी, बे-सुध-जन होइऐ झुल्ली जां ।
इक जोधे दी कोई बार होऐ, जिसी जित्त होऐ कदें हार होऐ ।
कुतै नेजे बालें घिरेआ दा, तलवारें दे बशकार होऐ ।
कुतै बनी बलूना घूंकी जा, कुतै फिलंगरै आंगू सूंकी जा ।
औखें दा भरेआ जीन होऐ, मन, देसै, जाती दी ईन होऐ ।
तुर्ता-फुर्ता पैंछी आंगू, बैरी कतरै कैंची बांगूं ।
लड़दे-भिड़दे गै अमर होऐ, मरिऐ बी नि उसी सबर होऐ ।
देसै दा मान बधाई जा, जग पिच्छूं बारां गाई जा ।
सुनी मन सागर ठाठां मारै, इस हुब्बा गै हुब्ब तरै सारै ।
अऊं उच्छलां लैहुर बनी-बनिऐ, बधी-बधिऐ कंढे खुल्ली जां
कोई ऐसा गीत सुना साथी.....
जां इस चाल्ली दा गीत होऐ, जिस बिच नोखा संगीत होऐ ।
इक ओपरी दुनिया बस्सी जा, लैहुरां मारै दी प्रीत होऐ ।
होऐ शौ-जोआनी ब्हारा दी, बिच सूंक नदी जां धारा दी ।
बिच भौंरें दी गुंजार होऐ, कन्ने सन-सन हंस होआरा दी ।
बिच पक्खरुऐं दी चैहुक होऐ, फुल्लें दी मिट्ठी मैहुक होऐ ।
कुसै नाड़ुऐ कंढे लेटे दे, सारे अरमान समेटे दे ।
निम्मी रिमझिम होऐ तारें दी, मिट्ठी-नेही फोहारें दी ।
इक मन-भांदी-नेही गूंज होऐ, मन उड्डरै आक्खो कूंज होऐ ।
नेकी जां बदी दा थोहू नि होऐ, होनी अनहोनी दा भो नि होऐ।
अऊं धरती-अम्बर चक्कर लां, कदें गास फिरां कदें उ'ल्ली जां ।
कोई ऐसा गीत सुना साथी.....
जां कोयल कूका दा बैहुम होऐ, कुसै मारु हिरखै दा सैहुम होऐ।
मन थुड़ै बिरहै दी पीड़ा नै, बे-बसी होऐ, किश रैहुम होऐ ।

साथी का गीत

हिंदी भावानुवाद

सारी दुनिया बिसराऊं, ऐसा गीत सुनाना साथी ।
मन-मौज का जहाँ पसारा हो, बेसुधी का वारा-पारा हो ।
योद्धा की हो वीर-गाथ, हार-जीत का रहे साथ ।
घिरा हो चाहे भालों से, नाचे खड्ग के तालों पे ।
विषम विषधर फूत्कारे, बगूले-सा शत्रु संहारे ।
कठिनाइयों भरा जीवन हो, देश प्रेम में डूबा मन हो ।
चंचलता का पांखी हो, शत्रु के लिए फाँसी हो ।
रणभूमि में खेत रहे, स्मृति सदा सचेत रहे ।
मर कर न धीरज धरे, बार-बार जिए और मरे ।
बलिदान सागर की लहर बने, प्रीति घन गहरे घने ।
उछलूं उत्ताल तरंग बना, लौटूं किनारे से टकरा ।
सारी दुनिया बिसराऊं.....
ऐसा फिर कोई गीत रहे, जिसमें अनोखा संगीत भरे ।
स्वर्ण-प्रेम की बस्ती में, लहर जैसी रीत रहे ।
बसंत भरी जवानी में नदी-पर्वत जैसी रीत रहे ।
भंवरों का गुंजन छाया हो, हंसावलि की माया हो ।
पंछियों की चहक रहे, फूलों की मृदु महक रहे ।
झरने के तट पर लेटे हुए, अरमानों को समेटे हुए ।
मद्धिम रिमझिम तारों की, शीतल कण फुहार चले ।
भले-बुरे का थाह न हो, होनी-अनहोनी का राह न हो ।
अंबर में गहरे पैठूं, धरती की कोई चाह न हो ।
सारी दुनियां बिसराऊं....
कोयल कुहक का भास रहे, मारू प्रेम का आभास रहे ।
मन घुटे विरह की पीड़ा में, बेबसी की दीक्षा पास रहे ।

कोई कंत फिरै कुतै परदेसें, कोई घर डीकै खु'ल्ले केसें ।
औंसी पर औंसी पांदी जा, ओ पूरी जा, इक रौंहदी जा ।
चकरी दी चन्नै हांब होऐ, चन्न ल'ब्बै निं किश लाभ होऐ ।
ओ रहानी मुड़ी-मुड़ी डोआर भरै, टेरी पर टेरी पार करै ।
लाटा दवालै अनगिन चक्कर, कुतै उच्चे थाहरें ला पक्खर ।
उसी सेक नि स्हारै ढलकी जा, जे छ्होऐ तां लांबा सलगी जा ।
सिदकें गी दिक्खी-दिक्खी में दुख भुल्ली जां मन झुल्ली जां ।
बस होश र'वै नी जीने दी, ना खाने दी ना पीने दी ।
कोई लक्ख कोआलै, लक्ख आखै कुसै लाहुमे तान्ने-मीहुने दी ।
कोई दोखी दुबधा जागै नि, कोई अपना पराया थागै दी ।
कोई तां'ग-कसाला डंगै नेई, मेरे दवालेआ लंघै निं ।
में दूर खुदी शा मती दूर, हिरखै-प्रीतै बिच चूर-चूर ।
अपनी भरपूर खमारी च, लम्मी अनसंभी तारी च ।
कुसै डूगे सागर डुब्बी जां, कुसै सिरै-पराडै खु'ब्बी जां ।
जुग बीती जा कोई बोलै नि, मेरी लग्गी दी ताड़ी खोलै नि ।
में बिफ्फरेआ दा मस्ती च कुतै छलकी जां कुतै डु'ल्ली जां ।
कोई गीत सुना साथी सारी दुनिया गी भुल्ली जां ।
लै छाई जा मन-मौजा दी, बेसुध-जन होइऐ, झुल्ली जां ।

केश बिखराए कोई विरहिणी, परदेसी की प्रतीक्षित आस रहे ।
रेखाओं में उलझी बैठी हो, औंसी[1] के खेल में हास रहे ।
चाँद-चकोरी के रिश्ते में, विरह से उर संतप्त रहे ।
प्रेम दिवानी विरह अग्नि की ज्वाला भीषण संत्रस्त रहे ।
अग्निशिखा के अनगिन प्रेमी परवानों को मात करे ।
ताप ज्वाला सह न सके, पल में आत्मसात् करे ।
मन झूमे उसकी प्रीति पर, प्रेम की अद्भुत रीति पर ।
सारी दुनिया बिसराऊं.....
होश रहे न जीने की, न खाने की न पीने की ।
लाख बुलाए न बोलूं कुछ कहुं ज़ख्मों को सीने की ।
मन में दुविधा, खेद न हो, अपने-पराए का भेद न हो ।
इच्छा-अभाव सताएं नहीं, मेरे पास कोई आए नहीं ।
निजता से मैं बहुत दूर, प्रीति में रहूँ चूर-चूर ।
अपनी भरपूर खुमारी मे, बैठा रहूँ यादों की अटारी में ।
डूबूं उतराऊं किसी गहरे सागर में, तन्हाई की चादर में ।
जुग बीतें कोई बोले न, मेरी अटल समाधि खोले न ।
मद-मस्ती में मैं खोया रहूँ, कहीं भर जाऊं, कहीं छलकूं भी ।
सारी दुनिया बिसराऊं, ऐसा गीत सुनाना साथी ।
मन-मौज का जहाँ पसारा हो, बे-सुधी का वारा-पारा हो ।

---

1. बिछुड़े प्रियतम से मिलन होगा कि नहीं अथवा मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति होगी या नहीं—इन बातों का पूर्वानुमान लगाने के लिए लोक-मन बहुत-सी लंबाकार रेखाएं खींचता है । फिर इन रेखाओं मे प्रथम से आरंभ करके एक-एक को छोड़कर प्रत्येक रेखा के नीचे तिरछी रेखा डाली जाती है । ऐसा करते हुए यदि अंत में एक रेखा तिरछी होने से बच जाए तो माना जाता है कि मनोकामना पूर्ण होगी । रेखाओं से अनागत विषयक पूर्वानुमान लगाने की इस विधि को "औंसियाँ डालना" कहते है ।

परिशिष्ट-2

सहायक ग्रंथ सूची

डोगरी

रामायण	शंभुनाथ शर्मा
आजादी बाद दी डोगरी कविता	संपादक—वेदपाल "दीप"
डोगरी कवि शंभुनाथ शर्मा	संपादक—देवरत्न शास्त्री

हिंदी

रामचरित मानस	तुलसीदास
रामायण	बाल्मीकि

अंग्रेज़ी

जम्मू राज	डा. सुखदेव सिंह चाड़क
कल्चरल हेरिटेज ऑफ डोगराज़	ज्योतीश्वर पथिक